विज्ञान परिचर्चा

त्रैमासिक पत्रिका
वर्ष 4, अंक 4
अप्रैल–जून 2014

अधिशासी सम्पादक

देवी प्रसाद उनियाल,
वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी, उत्तराखंड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद्, (यूकॉस्ट)

प्रबन्ध सम्पादक

कमला पन्त,
अध्यक्ष, पीपुल्स एसोसिएशन ऑफ हिल एरिया लांचर्स (पहल)

प्रधान सम्पादक

मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी
एसोशिएट प्रोफेसर (से.नि.),
डी.बी.एस. कालेज, देहरादून

सम्पादन सहयोग

शशिकान्त गुप्त
एसोशिएट प्रोफेसर (से.नि.),
डी.बी.एस. कालेज, देहरादून

अजय कुमार बियानी
एसोशिएट प्रोफेसर,
डी.बी.एस. कालेज, देहरादून

नीलाम्बर पुनेठा
जिला समन्वयक, यू–कास्ट, पिथौरागढ़

अशोक कुमार पंत
राज्य समन्वयक,
राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस, उत्तराखण्ड

दिनेश चन्द्र शर्मा
ग्रा० व पोस्ट मस्वासी,
तहसील स्वार, रामपुर, (उ.प्र.)

सलाहकार मण्डल

प्रो. ए.एन. पुरोहित,
पूर्व कुलपति,
हेनब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, आलमी आँचल,
डोभालवाला, देहरादून

श्री विजय कुमार ढौंडियाल
महानिदेशक,
उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद,
देहरादून

डॉ. राजेन्द्र डोभाल,
सी. एम. डी.,
राष्ट्रीय शोध एवं विकास निगम,
नई दिल्ली

डॉ. एस.एस. नेगी,
निदेशक,
वन अनुसंधान संस्थान,
देहरादून

प्रो. एस.सी. सक्सेना,
पूर्व निदेशक,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान,
रूड़की

डॉ. ए.के. गुप्ता,
निदेशक, वाड़िया हिमालय भूविज्ञान संस्थान,
देहरादून

डॉ. मनोज पटेरिया,
निदेशक,
राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी संचार परिषद्,
नई दिल्ली

डॉ लीलाधर जगूड़ी,
सीताकुटीर, बदरीपुर,
देहरादून

डॉ. एम.ओ. गर्ग,
निदेशक,
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
देहरादून

प्रो. धीरेन्द्र शर्मा,
निदेशक,
सेंटर फॉर साइंस पॉलिसी रिसर्च, निर्मल निलय,
भगवंतपुर, देहरादून

डॉ. रवि चोपड़ा,
पीपुल्स साइंस इंस्टीट्यूट,
252, वसंत विहार, फेज–1,
देहरादून

डॉ. बी.एस. बिष्ट,
पूर्व कुलपति,
जी.बी.पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
पन्तनगर

डॉ. जी.एस. रौतेला,
महानिदेशक,
राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद्,
कोलिकाता

डॉ. डी.के. पाण्डे,
राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद,
नई दिल्ली

डॉ अनुज सिन्हा,
पूर्व सलाहकार, विज्ञान प्रसार
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग,
भारत सरकार

डॉ एल.एम.एस. पालनी,
पूर्व निदेशक,
गोविन्द बल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण
विकास संस्थान, कटारमल कोसी,
अल्मोड़ा

प्रो. रामसागर,
पूर्व निदेशक,
आर्यभट्ट प्रेक्षण विज्ञान संस्थान,
नैनीताल

डा. जगदीश चन्द्र भट्ट,
निदेशक,
विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
अल्मोड़ा

© vigyan pricharcha, 2010

प्रकाशकीय कार्यालय
मकान नं. – 108, लेन नं.–1, विवेकानन्द ग्राम जोगीवाला, हरिद्वार रोड़, देहरादून

मोबाइल : 09759348564, 09412047994, 09897020782, 09837862096
ईमेल : pahal_uttarakhand@yahoo.co.in
वेबसाइट : www.pahal_understanding.org

मुद्रक
एक्सप्रेशन प्रिन्ट एंड ग्राफिक्स
174 सुभाष नगर, देहरादून, 9219552563
e: pacesanjay@rediffmail.com
XPS291114161

विज्ञान परिचर्चा के लेखों में प्रकाशित सभी विचार लेखकों के अपने हैं तथा लेखकीय स्वतन्त्रता के अन्तर्गत व्यक्त किये गये हैं। उनके साथ सम्पादक अथवा प्रकाशक का सहमत होना या उन विचारों का पत्रिका की नीति से कोई सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है।

विज्ञान परिचर्चा

त्रैमासिक पत्रिका
वर्ष 4, अंक 4
अप्रैल–जून 2014

पीपुल्स एसोसिएशन ऑफ हिल एरिया लांचर्स (पहल), भारतीय विज्ञान लेखक संघ (इस्वा) उत्तराखंड प्रभाग तथा उत्तराखंड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद् (यूकॉस्ट) के संयुक्त तत्त्वावधान में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका, अंतर्भूत उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद् समाचार पत्रक– अप्रैल–जून 2014

पहल

यह पत्रिका विज्ञान के प्रचार–प्रसार हेतु, विज्ञान–सुधी पाठकों के आग्रह पर 'प्रकाशकीय कार्यालय' से निःशुल्क प्रदान की जाती है।

पाठकों की प्रतिक्रिया

राजकीय बालिका इंटर कॉलेज, अगस्त्यमुनि, रुद्रप्रयाग में आयोजित एक कार्यशाला के अवसर पर विज्ञान परिचर्चा पत्रिका देखने का अवसर प्राप्त हुआ। उत्तराखण्ड में होने वाली विभिन्न वैज्ञानिक गतिविधियों के संबंध में जानकारी प्राप्त करना सदा ही महत्त्वपूर्ण होता है।

आपसे अनुरोध है कि विज्ञान परिचर्चा की प्रतियाँ नियमित रूप से हमें भेजते रहें जिससे मैं विज्ञान का ज्ञान अपने विद्यार्थियों के बीच और अच्छी तरह बाँट सकूंगा।

(डॉ0 विवेक मोहन अग्रवाल)
जीव विज्ञान अध्यापक,
राजकीय इंटर कॉलेज,
कोटमा, रूद्रप्रयाग 246439

विज्ञान परिचर्चा पत्रिका पढ़ी तो इसे मंगाने की इच्छा है। मुझे इस पत्रिका के बारे में पूर्व ज्ञान नहीं था किंतु सन् 2013 में हमारे विद्यालय से बाल विज्ञान कांग्रेस में राज्य स्तरीय प्रतियोगिता में एक बालक ने प्रतिभाग किया था तो उसे यह पत्रिका वितरित की गई थी जिस कारण मुझे भी पत्रिका पढ़ने का मौका मिला। इसमें विज्ञान सम्बन्धी सामग्री होती है अतः आपसे विनम्रतापूर्वक आग्रह है कि पत्रिका भेजने की कृपा कीजियेगा।

(महेन्द्र सिंह राणा)
सहायक अध्यापक,
राजकीय इंटर कॉलेज,
मिलोगी, पौड़ी गढ़वाल

अनुक्रम

पाठकों के पत्र	*02*
संपादकीय	*03*
उत्तराखण्ड के विज्ञान ऋषि 16 – **स्व. प्रो. शशिशेखरानन्द गैरोला** ***मुकुन्द नीलकंठ जोशी***	*04*
आधारभूत आवश्यकताओं में सौर ऊर्जा का योगदान ***ईशान पुरोहित[1] एवम् गुंजन पुरोहित[2]***	*07*
राष्ट्रीय प्रगति में समुद्री अनुसंधान का अवदान ***दुर्गादत्त ओझा***	*15*
महिलाओं में रक्ताल्पता समस्या और समाधान ***प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव***	*22*
अभी क्षय रोग के साथ संघर्ष जारी है ***मंजुलिका लक्ष्मी***	*24*
यूकॉस्ट समाचार पत्रक अप्रैल–जून 2014	*27–34*
स्वास्थ्य एवम् लोक कहावतें ***रेखा त्रिवेदी***	*35*
एक बहुगुणी पादप रोजमेरी ***ललित कोठियाल***	*37*
अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइए – जलीय स्तनधारी ***एस के गुप्त***	*40–48*
परितंत्र की कहानी 16 – उजड़ गया तालाब ***दिनेश चन्द्र शर्मा***	*48*
भारतीय विज्ञान लेखक संघ, उत्तराखण्ड प्रभाग द्वारा आयोजित संगोष्ठी ***डॉ0 एस.के. गुप्ता***	*50*
नई कलम – विज्ञान के विकास के चिर आकांक्षी चंद्रशेखर वेंकटरामन् ***प्रद्युम्न डोभाल***	*51*
विज्ञान वर्ग पहेली 11 का उत्तर	*52*
विज्ञान वर्ग पहेली 12	*52*
विज्ञान व्यंग चित्र – ***अशोक कुमार***	*53*
विज्ञान परिचर्चा के गत चार वर्षों के अंकों की विषय एवं लेखक अनुक्रमणिका	*54*

सम्पादकीय

विज्ञान परिचर्चा त्रैमासिक का यह चौथे वर्ष का अंतिम अंक आपके हाथ में है। इस वर्ष इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'विज्ञान' के प्रकाशन के सौ वर्ष पूर्ण हुए। इतनी लंबी कालावधि में विज्ञान लोकप्रियकण के लिये 'विज्ञान' ने जो अनवरत, अनथक कार्य किया है उसके लिये हम विनम्र अभिवादन करते हैं तथा उस तथा वैसी ही अन्य अनेक अग्रजा पत्रिकाओं के पथ प्रदर्शन में हम भी धीरे–धीरे उचित दिशा में मार्गक्रमण कर सकेंगे ऐसा विश्वास प्रकट करते हैं। हमारी इन सोलह अंकों की छोटी सी यात्रा में हम क्या–क्या कर सके इसका एक सिंहावलोकन इस अंक में प्रस्तुत है जिसे देखने पर कुछ सीमा तक निश्चत रूप से संतोष का अनुभव मिलता है। हमें अनेक व्यक्तियों का प्रोत्साहन मिला, प्रशंसा मिली, सुधार के लिये सुझाव मिले, भूलों पर ध्यानाकर्षण मिला, टीका टिप्पणियाँ भी मिलीं। ये सभी हमारे लिये सही मार्ग पर बने रहने के लिए सहायक सिद्ध हुए और आगे भी होते रहेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि स्थापित एवं नवीन दोनों प्रकार के ही विज्ञान लेखकों का सहयोग सदैव मिलता रहा है।

पिछले कुछ दिनों में गंगा जल प्रदूषण की काफी चर्चा हो रही है। नदियों के प्रदूषित होने के लिये वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नति को दोष देने का रिवाज हो गया है। परन्तु ध्यान देने की बात हे कि नदी जल प्रदूषित हो रहा है यह जानकारी केवल वैज्ञानिकों द्वारा ही समाज को दी गई और यदि प्रदूषण कम करना है तो उसके उपाय भी केवल वैज्ञानिक ही बता सकते हैं। नदी जल प्रदूषण को लेकर समाज के भिन्न–भिन्न वर्ग अपने–अपने मतानुसार भांति–भांति के विचार प्रकट करते रहते हैं। जीवन के लिये जल अनिवार्य है। इसलिये स्वाभाविक रूप से प्राचीन काल से मानव बस्तियाँ नदियों के किनारों पर ही फली फूलीं। मनुष्य को जीवन यापन के लिये जैसे जल चाहिये वैसे ही औद्योगिक विकास के लिये भी जल चाहिये ही। एक लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति हुई तब से मानव की संख्या केवल बढ़ती ही जा रही है और गत एक सौ वर्षों में तो जनसंख्या वृद्धि की दर भी बहुत तेजी से बढ़ी है। गणना के अनुसार सन् 1800 में पृथ्वी पर 100 करोड़ मानव थे जो 1930 में अर्थात् 130 वर्ष में 200 करोड़ हुए परन्तु 1960 में अर्थात् केवल 30 वर्षो में 300 करोड़ और 1975 में अर्थात् केवल 15 वर्षों में 400 करोड़ हो गये। 1987 में केवल 12 वर्ष बाद 500 करोड़ तथा 11 वर्ष बाद 1998 में 600 करोड़ का आँकड़ा पार हो गया। आज हम 720 करोड़ से अधिक हो गये है। पृथ्वी उतनी ही है। पृथ्वी पर पानी भी उतना ही है। फिर भी यदि आज मानव अपनी आवश्यकतानुसार पानी प्राप्त कर पा रहा है तो केवल अपनी तेजी से हो रही वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक उन्नति के ही कारण। जल प्रदूषित हो रहा है तो उसके लिए भी जिम्मेदार हमारे क्रिया–कलाप हैं और वह प्रदूषण कम करना या समाप्त करना भी हम और केवल हम ही कर सकते हैं।

नदी जल प्रदूषण के दो मुख्य कारण हैं। एक नदी किनारे स्थित बस्तियों का मल युक्त जल नदी प्रवाह में जाना और दूसरे विभिन्न उद्योगों से निकलने वाले वर्ज्य पदार्थ और त्याज्य पानी का भी नदियों में ही बिना स्वच्छ किये छोड़ा जाना। इन दो कारकों के अलावा एक तीसरा कारक भी अनेक लोग बताते हैं और वह है नदियों के किनारे स्मशानों में शवदाह के बाद बची राख, मृत व्यक्तियों की अस्थियाँ तथा मूर्तिपूजा के बाद निर्माल्य के रूप में फूलों आदि का नदी में विसर्जित किया जाना। परन्तु ध्यान देने की बात है कि यह तीसरा कारक वैसा प्रदूषण नहीं कर सकता क्योंकि जैव अपक्षयक (बायोडिग्रेडेबल) पदार्थ पर्यावरण के स्वाभाविक भाग होते हैं। नदियाँ जंगलों से होकर बहती हैं और उनमें पेड, पौधे, पत्तियाँ फूल गिरते रहते हैं। नदियों में भांति–भांति के प्राणी भी रहते हैं और मरते भी हैं। ये सभी नदी तन्त्र का स्वाभाविक भाग हैं। जीवाश्मों से भरे हजारों मीटर मोटे प्राचीन अवसादी शैलों के स्तरक्रमों के रासायनिक विश्लेषण में भी किन्हीं प्रदूषणकारी तत्वों की बहुतायत नहीं मिलती। यह प्रमाणित करता है कि जीवजनित पदार्थ प्रदूषक नहीं होते। इनकी चिंता करने के स्थान पर नगरों की गन्दगी और कारखानों के मलों की चिंता अधिक करनी चाहिये।

नदी जल के बारे में बातें करने वाले बांधों के बड़े विरोधी होते हैं। परंतु मजे की बात यह है कि एक भी ऐसा पर्यावरणवादी नहीं होता जो स्वयं बिजली के बिना जीवन यापन करना चाहता हो। ऊर्जा चाहिये तो बांध बनाने ही पडेंगे। सिचाई के लिये नदी से दूर दराज के स्थानों को पानी चाहिये तो भी बाँधों के जलाशयों से नहरें निकालनी ही पडेंगी। नदी घाटी क्षेत्रों को बाढ़ की विभीषिका से बचाना है तो भी बाँध चाहिये ही। बांध जल प्रदूषण के कारक नहीं होते और बांध बना दिये इसलिये आगे नदी में पानी कम हो जाय ऐसा भी नहीं होता। उल्टे अतिवर्षा जैसी घटनाओं के समय बांध ही आगे की तबाही रोकने में सहायक होते हैं। गत वर्ष की त्रासदी के समय यह सिद्ध हो गया कि टेहरी बांध था इसलिये भागीरथी घाटी में वैसा विनाश नहीं हुआ जैसा अलकनन्दा या मंदाकिनी की घाटियों में हुआ।

इसलिये केवल नारों या कोरी भाषणबाजी से आगे निकल कर जल प्रदूषण के मुख्य कारकों को चिन्हित कर उन्हें समाप्त करने की ठोस योजनाएँ कार्यान्वित करना ही एकमेव उपाय है जिसके लिये हम सभी को कृतसंकल्प होना होगा।

उत्तराखण्ड के विज्ञान ऋषि–16

स्व. प्रो. शशिशेखरानन्द गैरोला

मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी

स्व प्रो. शशिशेखरानन्द गैरोला उत्तराखण्ड की एक ऐसी विज्ञान विभूति थे जिन्होंने दुर्गम गढ़वाल प्रदेश से निकल कर न केवल भारतवर्ष में वरन् संपूर्ण विश्व में अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा तथा ज्ञान के द्वारा अपने क्षेत्र तथा देश का नाम प्रकाशित किया। गढ़वाल क्षेत्र से वे पहले उपाधिधारी इंजीनियर थे। संपूर्ण भारत में वे पहले कुछ गिने चुने हाइड्रॉलिक्स इंजीनियरों में से एक थे। इंजीनियरिंग के अध्यापन में अपना सारा जीवन लगा देने वाले प्रो. गैरोला वास्तव में उत्तराखण्ड के एक महान् वन्दनीय एवं आदरणीय विज्ञान ऋषि के रूप में सदैव याद किये जायेंगे।

'आपने इंजीनियरिंग की उपाधि बड़े अच्छे ढंग से प्राप्त कर ली है। राज्य को आपकी योग्यता पर गर्व है। हम समझते हैं कि आपकी इस योग्यता का आपके राज्य को लाभ मिलना चाहिये। अतः हमारी यह इच्छा है कि आप यहाँ आ कर राज्य के इंजीनियर के रूप में अपनी सेवाएँ दें।' युवा शशिशेखरानन्द को टेहरी के महाराज का यह सन्देश प्राप्त हुआ तो वे चिंतित हो उठे। उनका परिवार टेहरी की रियासत की प्रजा था। उनके लिये महाराज की इच्छा का अर्थ होता था महाराज की आज्ञा। उस आज्ञा का उल्लंघन करना सम्भव न था। परन्तु शशिशेखरानन्द टेहरी जाना भी नहीं चाहते थे। वे रियासतों की स्थितियों से पूर्ण रूप से परिचित थे। वहाँ की राजनीतिक उठापटकों को उन्होंने देखा था। खुद उनके पिताजी किसी जमाने में टेहरी राज्य में तहसीलदार थे। टेहरी के तत्कालीन राजा तब नाबालिग थे। इसलिये सारी शासन व्यवस्था अंग्रेज

अधिकारी के हाथ में थी। जब राजा बालिग हुए तो भी अंग्रेज अधिकार से चिपके रहना चाहते थे। पिता बसवानन्द ने राजा को पत्र लिखा कि अब आपको अपना अधिकार ग्रहण कर लेना चाहिये। दुर्योग से वह पत्र राजा के हाथ में पड़ने के बजाय अंग्रेजों के हाथ लग गया। बस, फिर क्या था? अंग्रेज अधिकारियों ने ऐसा चक्र चलाया कि पिताजी को टेहरी राज्य छोड़ना पड़ गया और वे कभी वापस वहाँ न जा सके। इस सारे इतिहासक्रम के भुक्तभोगी युवा शशिशेखरानन्द टेहरी जाते भी तो कैसे? और न जाते भी तो कैसे? राजरोष सारे खानदान पर, नाते रिश्तेदारों पर भारी पड़ सकता था।

वे महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी से मिले। श्री गैरोला काशी हिंदू विश्वविद्यालय के ही छात्र थे। वहीं से उन्होंने इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की थी। मालवीय जी इस बुद्धिमान, प्रतिभाशाली युवा इंजीनियर की योग्यता जानते थे। जब गैरोला जी ने उन्हें बताया कि वे टेहरी नहीं जाना चाहते वरन् विश्वविद्यालय को ही अपनी सेवायें देना चाहते हैं तो मालवीय जी ने उन्हें आश्वस्त किया कि वे राजकोप की चिन्ता न करें। टेहरी नरेश से वे स्वयं बात करेंगे। उन्होंने बात की और मालवीय जी का सम्मान तो सभी करते ही थे। इसलिये श्री गैरोला काशी हिंदू विश्वविद्यालय में ही अवैतनिक अध्यापक हो गये। यह उनकी रुचि भी थी और यही उनका आदर्श भी था। फिर दो वर्ष बाद नियमित भी हो गये। आगे भी जीवन में उन्हें कई ऐसे अवसर मिले जब अच्छे वेतन पर उद्योगपतियों ने उन्हें बुलाया परन्तु अध्यापन कार्य छोड़ कर जाना उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। एक बार गये भी तो एक साल में ही वापस आ गये।

श्री शशिशेखरानन्द गैरोला का जन्म 11 नवंबर 1903 को पं. बसवानन्द गैरोला के द्वितीय पुत्र के रूप में हुआ। आपके बड़े भाई श्री शिवानंद तथा छोटे भाई श्री कुशलानन्द गैराला थे। गैरोला परिवार मूल रूप से कर्णप्रयाग के पास स्थित गैरोली गांव का है परन्तु तीन सौ या चार सौ वर्ष पूर्व ही उनके पूर्वज बडयारगढ़ गांव, बडयारगढ़ पट्टी में बस गये थे। शशिशेखरानन्द की प्रारंभिक शिक्षा उत्तर प्रदेश के अनूपशहर के आर्यसमाज विद्यालय में हुई जहाँ से हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर वे उच्च अध्ययन के लिये वाराणसी आ गये। सन् 1925 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के सेंट्रल हिंदू कॉलेज से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने विश्वविद्यालय के इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश लिया तथा सन् 1929 में वे इलेक्ट्रिकल मैकेनिकल इंजीनियर हो गये। और आगे अध्ययन के लिये वे इंग्लैण्ड तथा जर्मनी भी गये। सन् 1931 से 1933 तक काशी हिंदू विश्वविद्यालय में बिना वेतन लिये पढ़ाया पर सन् 1933 से उन्हे असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर नियमित नियुक्ति मिल गई। वेतन था 95 रूपये प्रतिमाह। इसी बीच उन्हें 500–600 रू की नौकरी का एक प्रस्ताव भी मिला था परन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया क्योंकि मालवीय जी और विश्वविद्यालय उन्हे धन की तुलना में अधिक प्रिय थे।

सन् 1946 में वे अमेरिका में सिविल इंजीनियरिंग में पोस्ट ग्रेज्युएशन करने के लिये गये। वहाँ उन्होंने हाइड्रॉलिक्स विषय में विशेषज्ञता प्राप्त की। वापस लौटने के बाद काशी हिंदू विश्वविद्यालय में सिविल इंजीनियरिंग विभाग प्रारंभ किया। अब वे रीडर बन गये थे। सन् 1955 में भारत के केन्द्रीय मंत्री मनुभाई शाह के विशेष आग्रह पर एक वर्ष के लिये मोर्वी इंजीनियर कॉलेज में गये थे पर जल्दी ही लौट आये। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में उन्हें तब प्रोफेसर पद पर नियुक्ति मिली। उसके बाद वे विश्वविद्यालय की टेक्नोलॉजी एण्ड एग्रिकल्चर फैकल्टी के डीन अर्थात् संकायाध्यक्ष नियुक्त हुए। सन् 1963 में वे सेवानिवृत्त हुए परन्तु विश्वविद्यालय ने उन्हें पुनः पाँच वर्ष के लिये सेवावृद्धि प्रदान की क्योंकि विश्वविद्यालय को प्रो. गैरोला की आवश्यकता बनी ही हुई थी।

प्रो. गैरोला एक समर्पित अध्यापक थे। उनके विद्यार्थी विश्व भर में अनेक स्थानों पर उच्च से उच्च पद सुशोभित कर रहे हैं। उनके ऐसे विद्यार्थियों की सूची बहुत लम्बी है जो सभी आज भी उनका अत्यन्त आदर एवं गौरव के साथ स्मरण करते हैं। महामना मालवीय जी के आदर्शों से प्रेरित प्रो. गैरोला अपने विद्यार्थियों से निरपेक्ष प्रेम करते थे। अनेक ऐसे विद्यार्थी बताते हैं कि प्रो. गैरोला उनके केवल अध्यापक ही नहीं थे वरन् अभिभावक भी थे। कई बार यदि विद्यार्थी के पास शुल्क चुकाने के लिये पैसे न हों तो प्रो. गैरोला अपने पास से उसकी फीस जमा कर देते थे ताकि केवल धन के अभाव में किसी का अध्ययन का क्रम भंग नहीं होना चाहिये।

अध्यापन के अतिरिक्त प्रो. गैरोला शिक्षणेतर गतिविधियों में भी सतत सक्रिय रहते थे। आज जिसे नेशलन कैडेट कोर (एन. सी. सी.) कहते हैं वैसे उन दिनों युनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर हुआ करता था। सन् 1940–41 में प्रो. गैरोला उसके अधिकारी थे। परन्तु उनके छोटे भाई कुशलानन्द गैरोला स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी थे तथा सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता थे। इसलिये प्रो. गैरोला को भी यू.टी.सी. के अधिकारी का पद छोड़ना पड़ा।

प्रो. गैरोला की खेलकूद में भी काफी रुचि थी। वे विश्वविद्यालय के स्पोर्ट बोर्ड के सेक्रेटरी थे। स्वयं भी क्रिकेट तथा टेनिस के बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विकास के लिये जितना महत्व अध्ययन का है उतना ही महत्व खेलकूद तथा अन्य साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का भी होता है इस बात पर उनका दृढ़ विश्वास था। इंजीनियरिंग कॉलेज के प्रत्येक प्रकार के आयोजन में वे स्वयं सदैव अग्रणी रहते थे तथा विद्यार्थियों का नेतृत्व करने के लिये तत्पर रहते थे। कॉजेल दिवस, विश्वविद्यालय स्थापना दिवस आदि अवसरों पर मॉडल प्रदर्शन हुआ करते थे जिनके आयोजन की जिम्मेदारी प्रो. गैरोला की होती थी।

प्रो. गैरोला स्वयं एक अच्छे कवि थे। हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं में उत्कृष्ट पटुता प्राप्त करने के बाद भी वे सदा अपनी मिट्टी से जुड़े रहे तथा अपनी मातृभाषा गढ़वाली में साहित्य रचना करना पसन्द करते थे। गढ़वाली भाषा में वार्णिक वृत्तों में मर्मस्पर्शी कविता लिखने के लिये जिस सहृदयता तथा भाषा पर अधिकार की आवश्यकता होती है वह प्रो. गैरोला की रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। अपनी विदेश यात्रा के अवसर पर अपनी माँ तथा मातृभूमि को संबोधित उनकी कविता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है (देखिये बॉक्स)।

उनका दूसरा शौक था फोटोग्राफी का। यद्यपि यह एक शौक ही था परन्तु उसमें उन्होंने महारत व्यावसायिक स्तर की प्राप्त कर ली थी। वे केवल फोटो खींचते ही नहीं थे वरन् घर पर ही फिल्मों की डेवलपिंग, प्रिंटिंग और एन्लार्जमेंट भी कर लेते थे। इसके लिये घर में उन्होंने बाकायदा एक प्रयोगशाला बना ली थी।

प्रो. गैरोला एक अध्यापक के साथ ही साथ एक अत्यन्त कुशल प्रशासक के रूप में भी ख्यातनाम थे। वे विश्वविद्यालय के तीन–तीन छात्रावासों के एक साथ वार्डन कई वर्ष तक रहे। एक विभागाध्यक्ष तथा संकाय प्रमुख के रूप में अपने विभाग तथा संकाय में अधुनातन उपकरण आयें, प्रयोगशालाएँ आधुनिकतम यंत्रों तथा तकनीकों से सुसज्जित हों, पुस्तकालय अत्यन्त सम्पन्न हों, सभी श्रेष्ठ वैज्ञानिक पत्रिकाएँ आती रहें इसके लिये वे सतत प्रयत्नशील और आवश्यकतानुसार संघर्षशील बने रहते थे।

प्रो. गैरोला अपने क्षेत्र की लगभग सभी प्रमुख संस्थाओं से विविध रूपों में संलग्न रहे। उदाहरणार्थ वे इंस्टीटयूट ऑफ इंजीनियर्स, जियोफिजिकल यूनियन ऑफ यू.एस.ए., अमेरिकन सोसाइटी ऑफ मैकेलिकल इंजीनियर्स, हाइड्रोग्राफिक रिसर्च आदि संस्थाओं के आजीवन सदस्य तथा फेलो थे।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने के बाद प्रो. गैरोला ने देहरादून को अपना स्थायी निवास बना लिया। उनका अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम तथा उसके लिय कुछ करने की अभिलाषा बलवती थी। अपने मूल स्थान बडयार क्षेत्र के निवासी विद्यार्थियों को विविध प्रकार की शैक्षणिक तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त हों इस दृष्टि से उन्होंने अपने दादाजी के नाम पर पं. राघवानन्द गैरोला मेमोरियल ट्रस्ट की स्थापना की जिसके लिये उन्होंने अपनी सारी अर्जित संपत्ति दान कर दी। अब वह सारा धन उत्तराखण्ड टेक्निकल विश्वविद्यालय को दे दिया गया है जिसके माध्यम से बडयार के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति आदि की व्यवस्था होती है।

देहरादून में प्रो. गैरोला ने डॉ. रमानाथ सिंह तथा अन्य अनेक सहयोगियों के साथ मिल कर काशी हिंदू विश्वविद्यालय प्राचीन छात्र संघ की स्थापना की जो हिंदू विश्वविद्यालय के सभी प्राचीन छात्रों का एक सुन्दर संगम है जिसके माध्यम से विविध शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उपक्रमों द्वारा इस क्षेत्र के विद्यार्थियों तथा विद्यालयों के विकास के लिये कार्य किया जाता रहा है।

(उपर्युक्त लेख हेतु प्रो. शशिशेखरानन्द गैरोला के द्वितीय सुपुत्र प्रो. विजय कुमार गैरोला ने समस्त जानकारी प्रदान की तथा कनिष्ठ सुपुत्र श्री विधु शेखर गैरोला ने प्रो. गैरोला का चित्र उपलब्ध कराया जिसके लिये लेखक दोनो बंधुओं के प्रति आभार व्यक्त करता है।)

माँ और मातृभूमि से

(उच्च शिक्षा के लिये विदेश गमन की कल्पना पर)

माता विदा दे अब आज मैं कू
जाण छऊँ में अति दूर देश
विद्या पढ़ी सात समुद्र पार
सच् जाण माँ जी झट औलु त्वैमू 1

औंदान आँसू दुइ नैनु मेरा
दे धैर्य माँ तू अति शांति मूर्ति
विदेश माँ रै करि ज्ञान प्राप्ति
माँ वत्स तेरो झट आलु त्वैमू 2

बध्यूं छऊँ माँ शुचि नेह से मैं
कल्याणकारी कतु प्रेम प्यारो
रै तेरि गोदी सुखदायि माँजी
पाये अनन्त सुख चैन मैन 3

अनेक कष्ट सहि त्वैन पाल्यू
चाहे सदा ही हित पूर्ण मेरो
निमित्त मेरा सुख भोग छोड़े
रखी के माँजी नित नेम त्वैन 4

शिक्षार्थ होंदू घर से विदा मैं
आशीष दे मैं सणि प्यारि माँजी
विद्या पढ़ी मैं करि ज्ञान प्राप्ति
झट् त्वै मु औलो प्रिय वत्स तेरो 5

माथो टिकै की दुइ चर्णु माझे
प्रणाम कर्दू अब त्वैक माता
प्रसन्न व्है दे रज चर्णु की मै
आशीष दे माँ निज वत्स तै तू 6

– शशि शेखरानन्द गैरोला

(यह कविता प्रो. गैरोला ने सन् 1925 में लिखी थी जब वे बी.एससी. इंजीनियरिंग के प्रथम वर्ष के छात्र थे। उस समय उन्होंने स्वप्न देखा कि वे उच्च अध्ययन के लिये विदेश जा रहे है और अपनी माता तथा मातृभूमि से बिदा ले रहे हैं। स्पप्न के उन भावों को उसी समय उन्होंने इस मर्मस्पर्शी कविता के शब्दों में पिरो दिया। संयोग से इंजीनियरिंग की उपाधि संपादित करने के बाद वे वास्तव में उच्च शिक्षा के लिए सन् 1929 में इंग्लैण्ड गये। प्रो. गैरोला की यह कविता सन् 1940 में स्व. देव सुमन जी ने 'हिमांचल' पत्रिका में पहले पहल प्रकाशित की।)

आधारभूत आवश्यकताओं में सौर ऊर्जा का योगदान

ईशान पुरोहित[1] एवम्
गुंजन पुरोहित[2]

किसी भी देश की सांस्कृतिक विविधता महज़ किसी स्थान की वेश भूषा, संगीत या फिर भाषा पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि पारम्परिक रहन सहन के तौर तरीके भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी प्रमाणित किये जा सकते हैं। मुख्य रूप से ६ बृहद जलवायु क्षेत्रों वाले हमारे देश में ऊष्ण मरुस्थल जैसे शहर (जोधपुर, जैसलमेर आदि) हैं तो शीतोष्ण मरुस्थल जैसे क्षेत्र (लेह आदि) भी हैं जहाँ का तापमान -४०° से +४०° सेल्सियस तक परिवर्तित होता है। लेकिन भारत के परिपेक्ष में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हर प्रकार के जलवायु क्षेत्रों में लोग रहते हैं और एक स्थापित संस्कृति और सभ्यता के साथ रहते हैं।

एक यूनिट बिजली का मूल्य महानगरीय जीवन में वीडियो गेम्स खेलने वाले बच्चों या बड़ों से पूछने के बजाय इस देश की सीमा पर बसे लद्दाख क्षेत्र में स्थित 'न्योमा' या 'जंस्कार' के किसी व्यक्ति से पूछें तो शायद हमको जवाब मिल जाएगा, या फिर विगत वर्ष आपदा में तबाह हुए उत्तराखंड स्थित केदारनाथ घाटी के ग्रामीणों से पूछा जाए। एक डिग्री की गर्मी या ठंडक हम वातानुकूलित कमरों में देश के विकास के लिए नीतियां बना रहे नीति निर्धारक तत्वों से न पूछकर द्रास, सियाचीन में या जैसलमेर बाड़मेर बॉर्डर पर रह रहे जवानों से पूछें तो शायद हमको 'ऊर्जा' की 'महत्ता' और 'महत्व' दोनों समझ आएंगे।

बढ़ते विकास के साथ–साथ ऊर्जा की भारी मांग और उसकी पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों (जीवाश्म ईंधन जैसे कोयला, पैट्रो पदार्थ आदि) का अंधाधुंध दोहन दुनिया के तमाम देशों की तरह हमारे देश की भी नियति बन गया है। फलस्वरूप एक ओर जहाँ देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन अपनी अंतिम साँसों को गिनना प्रारम्भ कर रहे हैं वहीं दिन प्रतिदिन ऊर्जा की भारी मांग हमको विदेशों से पैट्रो पदार्थ आयात करने पर विवश कर रही है। गौरतलब है कि भारत दुनिया के सबसे ज्यादा तेल आयात करने वाले देशों में चौथे स्थान पर है, जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत बड़ा भार पड़ रहा है और देश अपेक्षित विकास नहीं कर पा रहा है। एक दिन भी खाड़ी देशों में कोई समस्या या युद्ध का घटनाक्रम हो जाता है तो इसका असर सीधा हमारे देशवासियों की खाने की थाली पर पड़ जाता है। जितना प्रतिकूल प्रभाव ऊर्जा क्षेत्र अर्थव्यवस्था पर डाल रहा है, उस से ज्यादा इसके पर्यावरणीय कुप्रभाव हैं जो हमारे सम्मुख 'ओजोन परत क्षरण', अम्लीय वर्षा, बेमौसमी बारिश, अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि और 'हरित गृह प्रभाव' के रूप में प्रकट हो रहे हैं।

यहाँ से एक नयी सोच का जन्म होता है कि क्या हमको अपनी निर्भरता ऊर्जा के पारम्परिक स्रोतों से हटकर गैर पारम्परिक स्रोतों की ओर नहीं करनी चाहिए? क्या आपने सोचा है कि पिछले तीन चार दशकों में मानवीय गतिविधियों से पृथ्वी के तापमान में जो वृद्धि हुई है उसने दुनिया को किन पर्यावरणीय खतरों में झोंक दिया है? चार दिन लगातार बारिश हो जाए तो मुंबई महानगर वालों की सांसें थम जाती हैं और यही हाल समुद्र के किनारे बसे तमाम महानगरों का है कि कहीं पृथ्वी का तापमान एक डिग्री बढ़ा तो समुद्र किनारे बसे शहरों पर मुसीबत आ सकती है जहाँ दुनिया की तकरीबन आधी से अधिक आबादी बसती है। जीवन के लिए हमारी ऊर्जा आवश्यकताएं इतनी जटिल हो गयी हैं कि बिना प्रदूषण किये

पूरी ही नहीं हो सकती हैं? या फिर आज तक विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्रों में मनुष्य ने जितने शोध और विकास किये हैं वो क्या ऊर्जा के 'अक्षय' और गैर पारम्परिक स्रोतों (सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, आदि) को ऊर्जा की आपूर्ति के लिए प्रयोग में लाने के लिए काफी नहीं हैं? क्या ऊर्जा का अर्थ महज़ 'बिजली' तक ही है या इसके इतर हम ऊर्जा को उसी रूप में सोचना और संवर्धित करना शुरू कर सकते हैं जिस रूप में हमको इसकी जरूरत है? प्रस्तुत आलेख 'आधारभूत आवश्यकताओं में सौर ऊर्जा का योगदान' भारत के सन्दर्भ में केंद्रित किया गया है।

ऊर्जा की मूल अवधारणा

जल, प्राणवायु, भोजन आदि की भाँति 'ऊर्जा' भी जीवन का आवश्यक और अपरिहार्य घटक है। ऊर्जा के बिना गति एवं कार्य दोनों सम्भव नहीं हैं। मूलतः समूचे ब्रह्माण्ड का निर्माण द्रव्य और स्थान से हुआ है जिसमें ऊर्जा का सतत और असतत वितरण है। द्रव्य को ऊर्जा मैं परिवर्तित किया जा सकता है ($E=mc^2$)। ऊर्जा का यह परिवर्तन नाभिकीय प्रक्रियाओं (नाभिकीय विखंडन और नाभिकीय संलयन) द्रारा सम्भव है। द्रव्य से सम्बद्ध ऊर्जा निहितता के कारण ब्रह्माण्ड में ऊर्जा के असीमित स्रोत विद्यमान हैं। द्रव्य के इन्हीं आकाशीय पिंडों को हम ऊर्जा स्रोत या 'सितारा' भी कह सकते हैं जो कि अपने ऊर्जा उत्सर्जन की दर और द्रव्यमान क्षय की स्थितियों के अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में वर्गीकृत किये जा सकते हैं, (उदाहरणतः व्हाइट ड्वार्फ, क्वासर, पल्सर, नोवा, सुपर नोवा, न्युट्रान स्टार, ब्लैक होल आदि)। खगोलीय भौतिकी के अनुसार समूचे ब्रह्माण्ड में तकरीबन 10^{12} आकाशगंगायें हैं, जिनसे सम्बद्ध 10^{24} सितारे हैं (उदाहरणतः सूर्य एक सितारा है) जो सतत रूप से ऊर्जा का अत्सर्जन करते हैं। ब्रह्माण्ड में स्थित प्रत्येक पदार्थ चाहे वह नाभिकीय मूल कण हो अथवा विशाल आकाशीय पिंड हो, एक निश्चित कोणीय आवर्त गति से गतिमान है जिसका मूल कारण उससे सम्बंधित बलों अथवा ऊर्जा का होना है। अर्थात् ब्रह्माण्ड में कुछ भी स्थिर नहीं है, सब गतिमान है, सब ऊर्जावान है।

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते"

– ईशावास्योपनिषद्, शान्तिपाठ

ऊर्जा एवं विकास

विकास की अवधारणा को अगर हम किसी देश के समाज की प्रति व्यक्ति आय, या प्रति व्यक्ति उपलब्ध सकल घरेलू उत्पाद, अथवा स्थापित इंफ्रास्ट्रक्चर आदि से मापने के बजाय 'मानव विकास सूचकांक'[1] से मापें तो यह स्पष्ट होगा कि दुनिया के वो देश जिनको 'विकसित' देशों की श्रेणी में रखा जाता है उनका मानव विकास सूचकांक "0.80 से 1.0" तक होता है (उदाहरणतः कनाडा, अमेरिका, नॉर्वे, ऑस्ट्रेलिया आदि)। 'विकसित' देशों की अपेक्षा थोड़ा 'कम विकसित देशों' में यह सूचकांक "0.71 से 0.79" होता है (रूस, ब्राज़ील, ईरान, मलेशिया आदि), जबकि 'विकासशील' देशों के लिए इस सूचकांक का मान "0.53 से 0.71" तक होता है, (चीन, वियतनाम, थाईलैंड, भारत आदि) और इस से नीचे जितने देश हैं उनको विकास की दृष्टि से बहुत पिछड़ा माना जा सकता है। वर्ष 2013 में भारत का मानव विकास सूचकांक 0.554 था जिसके फलस्वरूप दुनिया में भारत का स्थान 136 वां है। चित्र–1 में दुनिया के देशों के मानव विकास सूचकांक और उनकी प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग का पैटर्न दिखाया गया है।

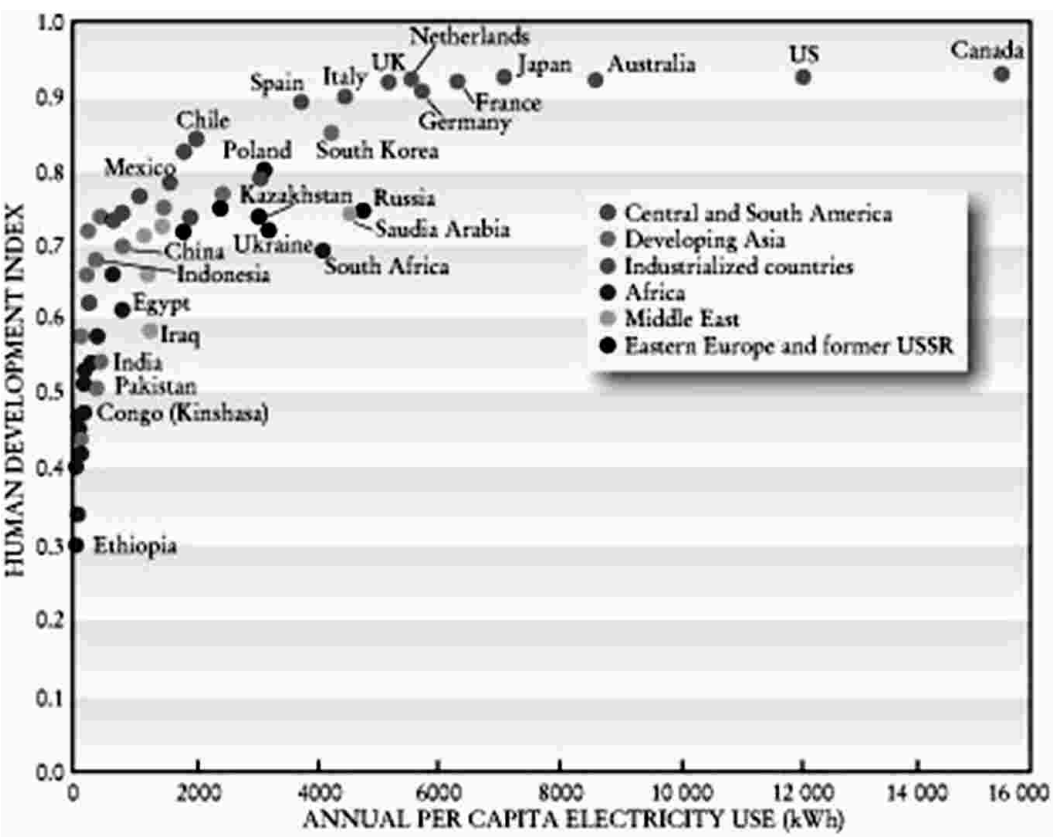

चित्र 1:
मानव विकास सूचकांक और प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपलब्धता (स्रोतः http://learn.fi.edu/guide/hughes/topic5.html)

यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात ध्यान देने की है कि विकसित देशों में प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग विकासशील देशों की तुलना में कई गुना ज्यादा है। उदाहरण के तौर पर कनाडा और अमेरिका जैसे देशों में प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग तकरीबन 14000 से 16000 यूनिट (किलोवाट घंटा) तक है, जबकि भारत में प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति औसत ऊर्जा उपभोग अभी 100 यूनिट से कम है। अगर हम पूरी दुनिया का औसत प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग देखें तो इसका औसत मान 2500 यूनिट प्रतिवर्ष से ज्यादा है; अर्थात् भारत में ऊर्जा की स्थिति दुनिया के औसत से भी बहुत–बहुत कमजोर है। भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती अगर विकास करने की है तो उसके लिए ज्यादा जरूरी है कि ऊर्जा क्षेत्र में ज्यादा से ज्यादा क्षमता स्थापित की जाये। अगर हम देश की आतंरिक ऊर्जा उपलब्धता का अध्ययन करें तो ये निष्कर्ष निकलेगा कि शहरों की तुलना में गावों की हालत ऊर्जा उपलब्धता और ऊर्जा उपभोग की दृष्टि से असमान है। देश में विकसित राज्यों का मानव विकास सूचकांक भी वहां की प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग और उपलब्धता से निर्धारित हो रहा है।

भारत का ऊर्जा परिदृश्य और चुनौतियाँ

भारत एक विकासशील देश है, जो जनसंख्या के आधार पर दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है, जबकि ऊर्जा खपत के मामले में यह छठवें स्थान पर है। सबसे महत्वपूर्ण पहलू ये है कि देश के पास ऊर्जा के संसाधन एवं जीवाश्म ईंधनों की बहुत कमी है। एक ओर जहाँ देश में पूरी दुनिया की 19 फीसदी आबादी निवास करती है वहीं यहाँ पर विश्व के केवल 0.7 प्रतिशत ही तेल, पेट्रोलियम पदार्थ और प्राकृतिक गैस के भण्डार हैं। भारत दुनिया भर की कुल उत्पादित ऊर्जा में महज़ तीन फीसदी योगदान करता है। अपनी मूलभूत जरूरतों की पूर्ति के लिए भारत अपनी कुल ऊर्जा मांग का तकरीबन 50 प्रतिशत से अधिक तेल, पेट्रो पदार्थ आदि आयात करता है। ऊर्जा क्षेत्र में मांग और आपूर्ति का प्रतिशत 10 फीसदी से ज्यादा है जिसके आने वाले सालों में 15 फीसदी से ज्यादा होना तय

है जो कि बढ़ती जनसंख्या, आर्थिक उदारीकरण, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण आदि से निर्धारित होगा। एक ओर देश में जहाँ 55 प्रतिशत आवासीय उपभोक्ताओं को ही वैद्युत ऊर्जा की उपलब्धता है वहीं दुसरा पहलू ये भी है कि आज भी देश की अनुमानतः 20 फीसदी जनता ग्रिड से नहीं जुड़ पायी है। यह आंकड़ा 30 से 35 करोड़ की जनसंख्या को ग्रिड से जोड़ने का है जिसके लिए बहुत बड़ी मात्रा में आर्थिक स्रोत चाहिए जिसकी मात्रा शायद देश के साल भर के सकल घरेलू उत्पाद से ज्यादा हो।

भारत ही नहीं दुनिया के तमाम विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में ऊर्जा नीति सबसे महत्वपूर्ण घटक बनकर रह गयी है। भारत की अर्थव्यवस्था में ऊर्जा नीति बिलकुल उसी तरह काम कर रही है जैसे कि ट्रायोड वाल्व[2] मैं ग्रिड कार्य करती है; कि ग्रिड वोल्टेज में थोड़ा सा परिवर्तन करने पर प्लेट की विद्युत धारा का मान बहुत बड़े अंतराल से परिवर्तित हो जाता है जो वोल्टेज के प्रवर्धन के लिए उत्तरदायी है। यहाँ ईरान–ईराक में पटाखा फूटा नहीं कि दिल्ली वालों की थाली से सब्जी गायब..।

तकरीबन ढ़ाई लाख मेगावाट की विद्युत उत्पादन की स्थापित क्षमता वाला हमारा देश आज भी तकरीबन 60 फीसदी बिजली कोयले से प्राप्त करता है। सिर्फ 12 प्रतिशत क्षमता ऊर्जा के गैर–पारम्परिक स्रोतों पर आधारित है जिनमें पवन ऊर्जा और सौर ऊर्जा का प्रमुख स्थान है। दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा कोयला उत्पादक देश होना भी यहाँ की समस्या को हल नहीं करता क्योंकि हमारे देश में पाया जाने वाला ज्यादातर कोयला निम्न श्रेणी का है जिसका तापीय मान अपेक्षाकृत कम होता है और इसमें राख की मात्रा ज्यादा होती है। दुसरी ओर एक पहलू ये भी है कि हमारे तापीय संयंत्रों की आयु काफी ज्यादा हो चुकी है जिसके फलस्वरूप उनकी औसत क्षमता मानकों से काफी कम आती है। साथ ही उनका "प्लांट लोड फैक्टर" भी कम रहता है जो कि चिंता का विषय है। ऊर्जा उपलब्धता के मामले में भारत की स्थिति इंडोनेशिया, चीन, जॉर्डन जैसे देशों से भी बहुत बुरी स्थिति में है।

क्या है सौर ऊर्जा?

पृथ्वी से तकरीबन 1.5×10^{11} मीटर की दूरी पर स्थित 1.31×10^{9} मीटर व्यास का गैसीय आकाशीय पिंड "सूर्य" हमारे सौर मंडल का ऊर्जा स्रोत है जहाँ पदार्थ अपनी चौथी अवस्था 'प्लाजमा' के रूप में मौजूद है जिसमें समूचे सौर मंडल का 11.86 फीसदी द्रव्यमान समाहित है। सूर्य एक नाभिकीय रिएक्टर की तरह काम करता है जिसमें हाइड्रोजन गैस नाभिकीय संलयन प्रक्रिया से हीलियम गैस में परिवर्तित होती है और अपार ऊर्जा का निस्तारण करती है। सूर्य पर प्रति सेकण्ड लगभग 70 करोड टन हाइड्रोजन गैस हीलियम में परिवर्तित होती है और प्रति सेकण्ड तकरीबन 50 लाख टन शुद्ध ऊर्जा का निस्तारण होता है (ऊर्जा=द्रव्यमान x प्रकाश का वेग^2) जिसको हम इलेक्ट्रोमैग्नेटिक विकिरण भी

कहते हैं। सूर्य की ऊर्जा उत्सर्जन की दर 3.8×10^{23} किलोवाट है जो पृथ्वी तक विकिरण के माध्यम से पहुँचती है, जिसको सूर्यातप भी कहते हैं। सूर्य और पृथ्वी की सतहों पर ऊर्जा की उपलब्धता क्रमशः 63 मेगावाट प्रति वर्ग मीटर और 200 वाट प्रतिवर्ग मीटर है। पृथ्वी सूर्य से बहुत दूर होने के कारण सूर्य से उत्सर्जित कुल ऊर्जा का एक छोटा सा भाग ही अवशोषित कर पाती है। वायुमंडल के बाहरी भाग में पृथ्वी सूर्य से तकरीबन 1.7×10^{14} किलोवाट (174 पीटावाट) ऊर्जा प्राप्त करती है। सूर्यातप से प्राप्त विकिरण विद्युत चुम्बकीय प्रवृत्ति का होता है जिसमें कॉस्मिक किरणें, गामा किरणें, एक्स किरणें, पराबैंगनी किरणें, दृश्य प्रकाश किरणें, तापीय किरणें, अवरक्त किरणें, रेडिओ किरणें आदि विभिन्न प्रतिशतों में उपलब्ध होती हैं। विद्युत चुम्बकीय विकिरण (किरणें) कई प्रकार (ऊर्जा और तीव्रता) की हो सकती हैं लेकिन समस्त किरणें प्रकाश के वेग से (3.0×10^{8} मीटर प्रति सेकण्ड) ही गतिशील होती हैं, परन्तु पारस्परिक ऊर्जा ($E=h\nu$ और $v=c/\lambda$) में एक दूसरे से भिन्न होती है जो कि उनकी तरंगदैर्ध्य से निर्धारित होती है।

वायुमंडल में उपस्थित गैसें सूर्यातप स्पेक्ट्रम के किसी न किसी भाग (तरंगदैर्ध्य) के लिए संवेदी होती हैं जो कि उनकी आतंरिक पदार्थ संरचना पर निर्भर करता है उदाहरणतः भारी गैसें (SF_6, PHF_6 आदि) जहाँ सौर स्पेक्ट्रम के पराबैंगनी भाग को अवशोषित करती हैं वहीं हल्की गैसें (Co_2, Sox, NOx आदि) इसके अवरक्त भाग के प्रति संवेदी होती हैं। क्योंकि समूचे सौर स्पेक्ट्रम में 6–7 प्रतिशत भाग पराबैंगनी श्रेणी, 47–48 प्रतिशत दृश्य प्रकाश और 46–47 प्रतिशत अवरक्त भाग होता है इसलिए वायुमंडल में मौजूद पदार्थ अपने से सम्बद्ध ऊर्जा क्षेत्र की ऊर्जा को अवशोषित करते हैं और उत्सर्जित करते हैं। इन्हीं वायुमंडलीय प्रक्रियाओं से भारी गैसों से ओजोन परत क्षरण, और हल्की गैसों से हरित गृह प्रभाव जैसे पर्यावरणीय प्रभाव उत्पन्न होते हैं।

भारत में सौर ऊर्जा की उपलब्धता

अनुमानतः 20 मेगावाट प्रति वर्ग किलोमीटर की संभावनाओं वाला हमारा देश सौर ऊर्जा के क्षेत्र में पिछले कई दशकों से सक्रिय है। भारत प्रतिवर्ष सूर्य से 5000 ट्रिलियन किलोवाट घंटा समतुल्य सूर्यातप प्राप्त करता है, जिसकी मात्रा हमारे देश की प्रतिवर्ष कुल आवश्यक ऊर्जा से कई गुना ज्यादा है। देश के पश्चिमी भाग (राजस्थान और गुजरात) सौर ऊर्जा की दृष्टि से सबसे सुगम हैं जबकि बाकी क्षेत्रों में प्रतिदिन औसतन 5.0 किलोवाट सूर्यातप प्रति वर्ग मीटर उपलब्ध है। देश में सौर ऊर्जा को साल के 300 से ज्यादा दिनों तक प्रयोग में लाया जा सकता है। भारतीय मौसम विभाग के द्वारा मापन किये गए सौर विकिरण के आधार पर "द एनर्जी एंड रिसोर्सेज इंस्टिट्यूट" ने भारत का सौर ऊर्जा मानचित्र बनाया है जिससे देश मैं सौज ऊर्जा के दोहन के लिए सबसे सुगम क्षेत्र की पहचान की जा सकती है। भारत ही दुनिया का एकमात्र देश है जहाँ पर गैरपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के लिए अलग मंत्रालय है जो पिछले तीन चार दशकों से इस क्षेत्र के व्यवसायीकरण के लिए सक्रिय है। चित्र 2 में भारत में उपलब्ध सौर विकिरण का मानचित्र प्रदर्शित किया गया है जो उपग्रह से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित है जिसको नेशनल रिन्यूएबल एनर्जी लेबोरेटरी (एन आर ई एल) और सौर ऊर्जा केंद्र, अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय, भारत सरकार के संयुक्त प्रयास से बनाया गया है जिसके अनुसार देश भर में सौर ऊर्जा की प्रचुर उपलब्धता है।

सौर ऊर्जा परिदृश्य और अनुप्रयोग

मूल रूप से देखा जाय तो पृथ्वी पर समस्त ऊर्जा स्रोतों का आधार सूर्य ही है। मुख्यतः अगर गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों की बात की जाय तो सौर विकिरण (सूर्यातप), पवन ऊर्जा और बायोमास (प्रकाशसंश्लेषण) आदि सूर्य से प्राप्त ऊर्जा के ही प्रारूप हैं। सौर ऊर्जा का उपयोगी ऊर्जा (विद्युत और उच्च तापीय) मैं रूपांतरण दो प्रकार की तकनीकों से सम्भव है, सौर तापीय एवं सौर फोटोवोल्टीय। सौर तापीय तकनीकें सूर्यातप को उच्च ताप में परिवर्तित करती हैं, जबकि फोटोवोल्टीय तकनीकें सूर्यातप को सीधे विद्युत में परिवर्तित करती हैं।

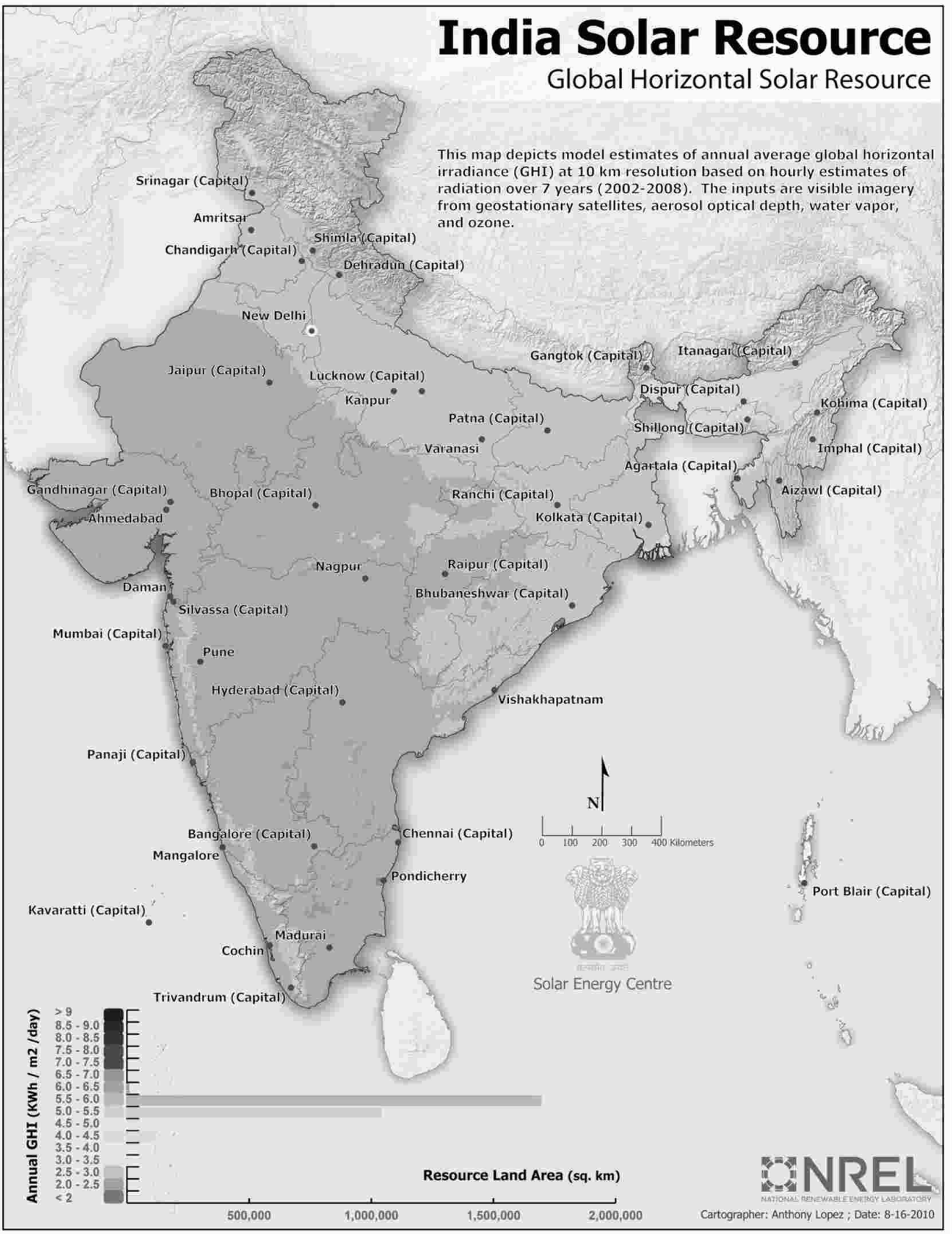

चित्र 2:
भारत का सौर ऊर्जा मानचित्र (स्रोतः http://mnre.gov.in/sec/solar.assmnt.htm)

सौर तापीय तकनीकें मूलत ऊष्मा गतिकी के मूल सिद्धांतों पर कार्य करती हैं जिनके अनुसार किसी भी संग्राहक का ताप सूर्य के टॉप (तकरीबन 6000 डिग्री) तक बढ़ाया जा सकता है (ऊष्मा गतिकी का शून्यवाँ नियम)। सौर तापीय तकनीकें सौर संग्राहकों पर आधारित होती हैं जो निर्धारित तापमान के अनुसार विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरणतः अगर आवश्यक तापमान 70–80 डिग्री तक है तो सामान पट्ट संग्राहक का प्रयोग किया जाता है जबकि 100–150 डिग्री के तापमान के लिए निर्वात नलिका संग्राहकों का प्रयोग होता है। यदि किसी इंडस्ट्रियल अनुप्रयोग के लिए अधिक उच्च तापमान 300–400 डिग्री की आवश्यकता है तो सामान पट्ट संग्राहकों की जगह संधारित्रों का प्रयोग किया जाता है जो सूर्यातप को किसी बिंदु अथवा रेखा पर केंद्रित करते हैं जिससे इसका तापमान 1000 डिग्री से अधिक तक बढ़ाया जा सकता है। और फिर विभिन्न तकनीकों द्वारा इस संगृहीत ऊर्जा को कई प्रकार के कामों में लाया जाता है। सौर ऊर्जा के द्वारा किये जाने वाले अनुप्रयोग किस स्तर तक पहुँच चुके हैं ये इसी बात से समझा जा सकता है कि सूर्यातप को संग्रहीत और केंद्रित करके किसी तापीय पावर प्लांट की तरह विद्युत उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान में भारत में इस तरह की कई परियोजनायें विकसित हो रही हैं जिनमें सूर्यातप से तापीय माध्यम से विद्युत उत्पादन किया जा रहा है, जबकि दुनिया में तकरीबन 2500 मेगावाट की इस प्रकार की परियोजनायें संचालित हो रही हैं। राजस्थान राज्य में इस तकनीक पर 50 मेगावाट की परियोजना गत वर्ष से कार्यरत है।

सौर तापीय तकनीकें घरेलू से लेकर उद्योगों तक के लिए ऊर्जा के समाधान मुहैया करवा सकती हैं। उदाहरण के तौर पर सौर कुकर तकनीक से खाना बनाना जहाँ घरेलू अनुप्रयोग के लिए एक सस्ता (जिस से साल भर में कई एलपीजी सिलिंडर बच सकते हैं) और स्वास्थ्यकारी (रसोई के काले धुएं से महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे हर साल कार्बन मोनो–ऑक्साइड युक्त काले धुयें से दुनिया भर में लाखों मौतें होती हैं) विकल्प है वहीं स्कूलों, छात्रावासों और बड़े संस्थानों में केन्द्रीयकृत कुकिंग के लिए भी बहुत कारगर है। भारत में सौर कुकिंग में बहुत काम हुआ है; उदाहरणतः शिर्डी साई धाम में प्रतिदिन तकरीबन पचास हज़ार लोगों का भोजन सौर संधारित्रों पर आधारित कुकिंग संयंत्र से बनाया जाता है। इस प्रकार की परियोजनायें ब्रम्हकुमारी आश्रम माउंट आबू, शांति–कुंज हरिद्वार जैसी सैकड़ों धार्मिक जगहों पर लगाईं गयी हैं जिनकी क्षमता 1000 से लेकर 20000 लोगों के लिए प्रतिदिन भोजन पकाने की है।

अगर हम अपने घरेलू ऊर्जा उपायों से ही शुरू करें तो हमारी ऊर्जा आवश्यकतायें खाना बनाने, पानी गरम करने, प्रकाश, टी वी, फ्रीज़, या फिर कुछ बिजली से चलने वाले उपकरणों की होती है। अपनी इन ऊर्जा की आवश्यकताओं के लिए हम पूर्ण रूप से एक लम्बी सप्लाई चेन पर निर्भर होते हैं। जैसे कोयले से बनने वाली बिजली पहले तापीय बिद्युत संयंत्रों में कोयले को जलाने से बनती है जिस प्रक्रिया की दक्षता काफी कम होती है। फिर संयंत्र से पारेषण लाइनों की सहायता से इस बिजली को उच्चीकृत और निम्नीकृत करके हमारे घरों तक पहुंचाया जाता है जिसकी एक एक प्रक्रिया में प्रचुर प्रवर्धन तथा पारेषण हानियां होती हैं। तकरीबन एक यूनिट बिजली को आपके घर तक पहुंचाने में एक यूनिट बिजली लाइन में व्यय हो जाती है; जबकि एक यूनिट बिजली बनाने के लिए तकरीबन 5–6 किलो कोयला चाहिए। इन तकनीकी कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब हम ग्रिड की बिजली से पानी गरम करते हैं तो वास्तव कितना गलत करते हैं। बड़े–बड़े उद्योग भी बहुत सारी तकनीकी प्रक्रियाओं के लिए ग्रिड की बिजली से प्रतिदिन लाखों लीटर पानी गरम करते हैं जो कि एक 'ऊर्जा अपराध' है। यहाँ से हम समझ सकते हैं कि वास्तव में हम अपने ऊर्जा के अनुप्रयोगों को कितनी सहजता से ग्रिड से हटाकर भी पूरा कर सकते हैं। विकास का अर्थ ये नहीं है कि ऊर्जा की हर छोटी बड़ी जरूरत के लिए हम हमेशा विद्युत ग्रिड पर ही निर्भर रहें। केंद्रित, विकेंद्रीकृत और वितरित ऊर्जा आवश्यकताओं के लिए सौर ऊर्जा सबसे बेहतरीन विकल्प है।

मिलीवाट से लेकर मेगावाट तक के ऊर्जा समाधान को सौर ऊर्जा द्वारा सहजता से किया जा सकता है जो कि किसी भी अन्य ऊर्जा स्रोत द्वारा सम्भव नहीं है। एक छोटी कैलकुलेटर की स्क्रीन को ऊर्जा देने से लेकर पृथ्वी के चक्कर लगा रहे पोलर उपग्रह को निरंतर वैद्युत ऊर्जा देना हो, किसी दूर दराज के गाँव में अथवा रक्षा से सम्बद्ध किसी क्षेत्र में बिजली पंहुचानी हो या फिर ग्रिड पर बिजली निस्तारित करनी हो, सौर ऊर्जा तकनीकें हर परिस्थिति में कारगर हैं। इसी तरह किसी तैरने के तालाब को गर्म करना हो, घरेलू स्तर पर खाना बनाना हो, किसी छात्रावास अथवा कारखाने में खाना बनाना हो, पानी गरम करना हो, वातानुकूलन या किन्हीं अनुप्रयोगों में उच्च दाब पर गर्म हवा पैदा करना हो, उच्च ताप (1000 डिग्री से भी अधिक) पैदा कर तापीय संयंत्रों की भाँति बिजली उत्पादित करनी हो, सौर ऊर्जा से सम्बंधित तकनीकें स्थापित रूप से उपलब्ध हैं।

यूनाइटेड नेशन्स इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट आर्गनाइजेशन (यूनिडो) द्वारा माध्यम क्षमता के उद्योगों के लिए किये गए एक सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलकर आया कि तकरीबन 50 फीसदी औद्योगिक प्रक्रियायें ऐसी हैं जिनमें जिस तापमान रेंज का उपयोग किया जाता है वो 250 डिग्री से कम के हैं। बड़े उद्योगों उदाहरणतः डेयरी उद्योग जो प्रतिदिन कार्यरत स्थिति में रहता है वहां पर 'पाश्चुराईजेशन, स्टीरिलाइज़ेशन, डाइंग' आदि प्रक्रियाओं में प्रतिदिन लाखों लीटर गरम पानी की जरूरत होती है जिसका तापमान 50 डिग्री से 67 डिग्री तक होता है। सौर ऊर्जा से इस स्तर का ताप सौर संग्राहकों के उपयोग से आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। भारत में औद्योगिक क्षेत्र में सौर तापीय ऊर्जा या उपयोग बहुतायत से किया जा रहा है।

सौर ऊर्जा के साथ सबसे सहज पहलू यह है कि ऊर्जा उपयोग का कोई भी क्षेत्र हो वहां पर इसका उपयोग किया जा सकता है। कृषि क्षेत्र में जहाँ हरित गृह बनाकर ठन्डे स्थानों में सब्जियां उगाई जाती हैं, वहीं सौर ऊर्जा को सिंचाई के लिए पानी पम्प करने और भवनों को ठंडा या गर्म करने में भी प्रयोग लाया जाता है। सौर पैसिव तकनीकों से भवनों में

ऊर्जा की खपत 50 फीसदी तक कम की जा सकती है। सौर ऊर्जा आधारित पम्पों और भवनों को उन्नत करने के लिए गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय द्वारा अनेक नीतियों का कार्यान्वयन किया जाता है जिनमें बैंकों से ऋण और सब्सिडी आदि की उपलब्धता रहती है।

कुछ लोग ये प्रश्न उठा सकते हैं कि सौर ऊर्जा तो महज दिन के वक़्त उपलब्ध है तो इसको रात में कैसे प्रयोग कर सकते हैं, खासकर उन परियोजनाओं में जो विद्युत उत्पादन अथवा बड़ी मात्रा में ऊर्जा की उपलब्धता से सम्बद्ध हों। इस दिशा में भी बहुत प्रगति हुई है और तापीय संग्राहकों की सहायता से सौर ऊर्जा को संग्रहीत कर संरक्षित किया जा सकता है जिसको रात के वक्त उपयोग किया जाता है। सौर तापीय संग्राहकों से सम्बद्ध तापीय विद्युत परियोजनाओं में इस तकनीक का उपयोग कर इन संयंत्रों को 16 से 20 घंटे सौर ऊर्जा के द्वारा चलाया जा सकता है।

सौर ऊर्जा क्षेत्र में भारत की उपलब्धियां

सौर ऊर्जा क्षेत्र में जहाँ अमेरिका, जर्मनी, जापान तथा अन्य विकसित देशों ने अभूतपर्व काम किया है वहीं भारत ने इस दिशा में तीन चार दशक पहले काम करना शुरू किया। आज देश में सौर ऊर्जा पर आधारित ग्रिड संयुग्मित 2650 मेगावाट की स्थापित क्षमता है, जबकि तकरीबन 81 लाख वर्ग मीटर सौर संग्राहक तापीय उपयोगों के लिए स्थापित किये गए हैं। इसके अतिरिक्त लाखों सौर कुकर और अन्य तकनीकें विकसित और वितरित की गयी हैं। वर्ष 2010 में देश में पहली 5 मेगावाट क्षमता की सौर विद्युत ऊर्जा परियोजना का निर्माण तमिलनाडु राज्य के शिवगंगा जिले में हूआ था। जिसके बाद आज तक इस क्षेत्र में त्वरित विकास हुआ है।

गैर–पारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय ने "जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन" के द्वारा भारत में ग्रिड युग्मित सौर ऊर्जा परियोजनाओं की नींव रखी, जिसके अनुसार वर्ष 2022 तक देश में 20000 मेगावाट की सौर ऊर्जा आधारित परियोजनायें कार्यरत होंगी। इसके अतिरिक्त इस नीति में देश भर में तकरीबन 200 लाख वर्ग मीटर सौर संग्राहक लगाने का भी प्रावधान है जो मुख्य रूप से उद्योगों में ऊर्जा उपलब्ध करवाएंगे। साथ ही लगभग 2000 मेगावाट ऑफ ग्रिड सौर परियोजनाओं का भी संकल्प है जो मुख्य रूप से देश के उन क्षेत्रों में लगाई जाएंगी जहाँ ग्रिड से बिजली पहुँचाना मुश्किल है।

इस नीति के इतर गुजरात राज्य ने अपनी अलग नीति के तहत तकरीबन 900 मेगावाट क्षमता की सौर परियोजनायें राज्य में विकसित की हैं। गुजरात में एशिया का सबसे बड़ा सौर पार्क स्थापित है। वर्तमान में देश के तकरीबन बारह राज्यों ने अपनी विशेष "सौर वैद्युत ऊर्जा नीति" अनुमोदित की है जिनके अंतर्गत देश के विभिन्न राज्यों में सौर ऊर्जा पर आधारित वैद्युत ऊर्जा परियोजनायें लगाईं जा रही हैं। गुजरात राज्य ने गांधीनगर में देश का सबसे पहला पीपीपी मॉडल लगाया है जिसमें सरकारी और गैर सरकारी इमारतों की छतों पर सौर पैनल लगाकर उनको ग्रिड से जोड़ा गया है जिसकी क्षमता 5 मेगावाट है। इस मॉडल की सफलता के बाद इसको राज्य के पांच शहरों में और लागू किया जा रहा है। पिछले चार सालों में देश में तकरीबन 2600 मेगावाट की ग्रिड सम्बद्ध सौर ऊर्जा परियोजनायें स्थापित हुई हैं जबकि हज़ारों मेगावाट क्षमता की परियोजनायें निर्माण के विभिन्न चरणों में हैं। देश की पहली 50 मेगावाट की सौर तापीय विद्युत उत्पादन परियोजना राजस्थान में विगत वर्ष स्थापित हो चुकी है तथा इस तकनीक पर आधारित तकरीबन 500 मेगावाट की परियोजनायें निर्माण के विभिन्न चरणों में हैं। कई सर्वेक्षणों से ये स्पष्ट हुआ है कि वर्ष 2030 तक भारत की ग्रिड सम्बद्ध सौर ऊर्जा क्षमता 50000 मेगावाट से अधिक होगी।

'सोलर एनर्जी कॉर्पोरेशन ऑफ़ इंडिया' का गठन देश में सौर ऊर्जा गतिविधियों को त्वरित रूप से कार्यान्वित करने के लिये हुआ है। कॉर्पोरेशन वर्तमान में 750 मेगावाट की ग्रिड युग्मित परियोजनाओं पर काम कर रहा है। जुलाई 2014 में ही अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय ने 1500 मेगावाट क्षमता की नयी सौर ऊर्जा परियोजनाओं की विज्ञप्ति जारी कर दी है जो वर्ष 2017 तक स्थापित हो जाएंगी। सरकार लेह और कारगिल जिलों में क्रमशः 5000 मेगावाट और 2500 मेगावाट क्षमता के सौर पार्क स्थापित करने की परियोजना पर विचार कर रही है। इसके अतरिक्त छतों पर लगने वाली सौर परियोजनओं की नीति, और राष्ट्रीय सौर मिशन के अन्य उद्देश्यों को भी कॉपेरिशन ही कार्यान्वित कर रही है। वर्तमान में देश के कई राज्यों में छतों पर आधारित ग्रिड संयुग्मित सौर परियोजनायें निर्माणाधीन हैं, जिनमें दिल्ली मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन की परियोजनायें भी प्रमुख हैं। गुजरात राज्य ने गांधीनगर में 5 मेगावाट क्षमता का छतों पर आधारित सौर ऊर्जा सयंत्र स्थापित किया है जिसको ग्रिड से जोड़ा गया है। वर्तमान में इस मॉडल को गुजरात राज्य के पांच और शहरों में लगाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त देश में राष्ट्रीय सौर ऊर्जा संस्थान जैसे शोध केंद्र हैं जहाँ पर सौर तकनीकों का विकास और उनके प्रमाणन का कार्य किया जाता है।

सारांश

ऊर्जा जीवन की धुरी है; वर्तमान ऊर्जा उत्पादन की प्रक्रियाएं और सिमटती हुई संसाधनों की मात्रायें मनुष्य को ये सोचने पर मजबूर कर रही हैं कि भविष्य में ऊर्जा का क्या होगा? आज दुनिया का कोई भी ऐसा देश नहीं है जो ऊर्जा की बढ़ती मांगों से और पारम्परिक स्रोतों से ऊर्जा पैदा करने की तकनीकों से जुड़े दुष्पर्यावरणीय प्रभावों से अछूता हो।

तकनीकी दृष्टि से समाज की कोई भी ऐसी मूल आवश्यकता नहीं है जो सौर ऊर्जा से पूरी नहीं की जा सकती है। घरेलू, व्यापारिक, कृषि या औद्योगिक हर क्षेत्र में सौर ऊर्जा का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। जरूरत इस बात की है कि सौर ऊर्जा को अन्य ऊर्जाओं के समकक्ष अधिक से अधिक व्यापारिक और व्यावहारिक बनाया जाय। समाज में ऊर्जा आवश्यकताओं, ऊर्जा मांग, ऊर्जा खपत और इस से जुडी गतिविधियों को लेकर जागरूकता फैलाई जाय ताकि समाज इन तकनीकों को सहज रूप से अपना सके।

प्रकृति ने पृथ्वी को सौर ऊर्जा के रूप में अक्षय ऊर्जा स्रोत दिया है जिसका उपयोग करके हम ऊर्जा सुरक्षा की दिशा

में तो जा ही सकते हैं साथ ही अपने पर्यावरण को संरक्षित भी कर सकते हैं। भारत के परिपेक्ष में सौर ऊर्जा का बहुत प्रचुर उपयोग किया जा सकता है अगर निम्नलिखित तथ्यों को सरकार नीतिगत स्वरूप से लागू करें;

1. प्रति व्यक्ति ऊर्जा में गैर–पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा की मात्रा निश्चित की जाये।
2. भवन निर्माण से सम्बद्ध नियमावली बनाकर उनमें सौर ऊर्जा तकनीकों को नितांत आवश्यक कर देना चाहिए।
3. किसी भी व्यावसायिक केंद्र में कुल खपत होने वाली ऊर्जा में सौर ऊर्जा का प्रतिशत निर्धारित करना चाहिए जिस से छत आधारित ग्रिड संयुग्मित अथवा असंयुग्मित सौर परियोजनाओं को प्रोत्साहन मिल सके।
4. डीजल पर आधारित व्यावसायिक संस्थानों, टेलीफोन और मोबाइल संचार के नेटवर्क हेतु प्रयोग होने वाले टावरों आदि का विद्युतीकरण सौर ऊर्जा के माध्यम से किया जाना चाहिए जिससे पर्यावरण में हानिकारक गैसों का निस्तारण रुक सके।
5. बड़े–बडे कारखानों, औद्योगिक संस्थानों आदि जहाँ ऊर्जा की खपत बहुत ज्यादा होती है उनको सौर ऊर्जा से एक निश्चित उत्पादन हेतु अनुबंधित किया जाना चाहिए।
6. उन क्षेत्रों को जहाँ ग्रिड से सम्बद्ध ऊर्जा पहुंचाना बहुत खर्चीला है (जैसे देश के पर्वतीय राज्य) सरकार को विशेष नीतियां बनाकर सौर ऊर्जा से सम्बद्ध किया जाना चाहिए। इस दिशा में उन राज्यों को विशेष सब्सिडी आदि की व्यवस्था की जा सकती है।
7. बड़ी सौर वैद्युत परियोजनाओं को प्रोत्साहित कर सौर ऊर्जा की कीमत कम करने की कोशिश की जानी चाहिए।
8. सौर ऊर्जा से सम्बद्ध तापीय तकनीकों को ज्यादा संरक्षण और प्रोत्साहन दिए जाने की जरूरत है क्योंकि ये फोटोवोल्टीय तकनीकों के मुकाबले ज्यादा दक्ष हैं और रात को जब सूर्य की रोशनी न हो तब भी विद्युत उत्पादन कर सकती हैं।
9. स्कूलों, प्रशिक्षण संस्थानों, छात्रावासों, विश्वविद्यालयों, कारखानों, संस्थानों, धार्मिक स्थलों, रक्षा संस्थानों इत्यादि जहाँ सामूहिक रूप से लोग रहते हों वहां पर "कम्युनिटी कुकिंग" जैसे विचारों और तकनीकों को बढ़ावा दिया जाय। इन स्थानों पर पानी गरम करने के लिए सौर तापीय संग्राहकों का प्रयोग अनिवार्य किया जाना चाहिए।
10. सौर ऊर्जा से सम्बंधित ज्ञान को स्कूल, डिप्लोमा, स्नातक, परा–स्नातक, इंजीनियरिंग, शोध इत्यादि सभी स्तरों पर मुख्य विषयों में पाठ्यक्रम के तौर पर शामिल किया जाना चाहिए। देश में सौर ऊर्जा क्षेत्र में डिग्री देने वाले संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिए जो इस विषय को जमीनी स्तर तक कार्यान्वित कर सकें।

नोटः मूल आलेख को सोलर इनर्जी कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया द्वारा वर्ष 2015 में आयोजित राष्ट्रीय निबंध प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार दिया गया है।

---

[1]अंतर्राष्ट्रीय मापक 'मापक विकास सूचकांक' मूलतः यूनाइटेड नेसन्स द्वारा निर्धारित सूचकांक है जिसका महत्तम मान 1.0 हो सकता है। विकास या यह सूचकांक सामाजिक और आर्थिक आधार पर ही देशों के विकास को प्रदर्शित करता है, जिसके मुख्य कारकों मैं स्वास्थ्य, शिक्षा एवं समृद्धि आदि शामिल हैं।

[2]ट्रायोड वाल्व एक ऐसी प्रवर्धन युक्ति है जिसके अनुप्रयोग से किसी कमजोर वैद्युत सिग्नल की शक्ति प्रवर्धित करके उसको अधिक तीव्रता वाले सिग्नल में बदला जाता है, हालांकि इसका स्थान वर्तमान में ट्रांजिस्टर तकनीक ने ले लिया है।

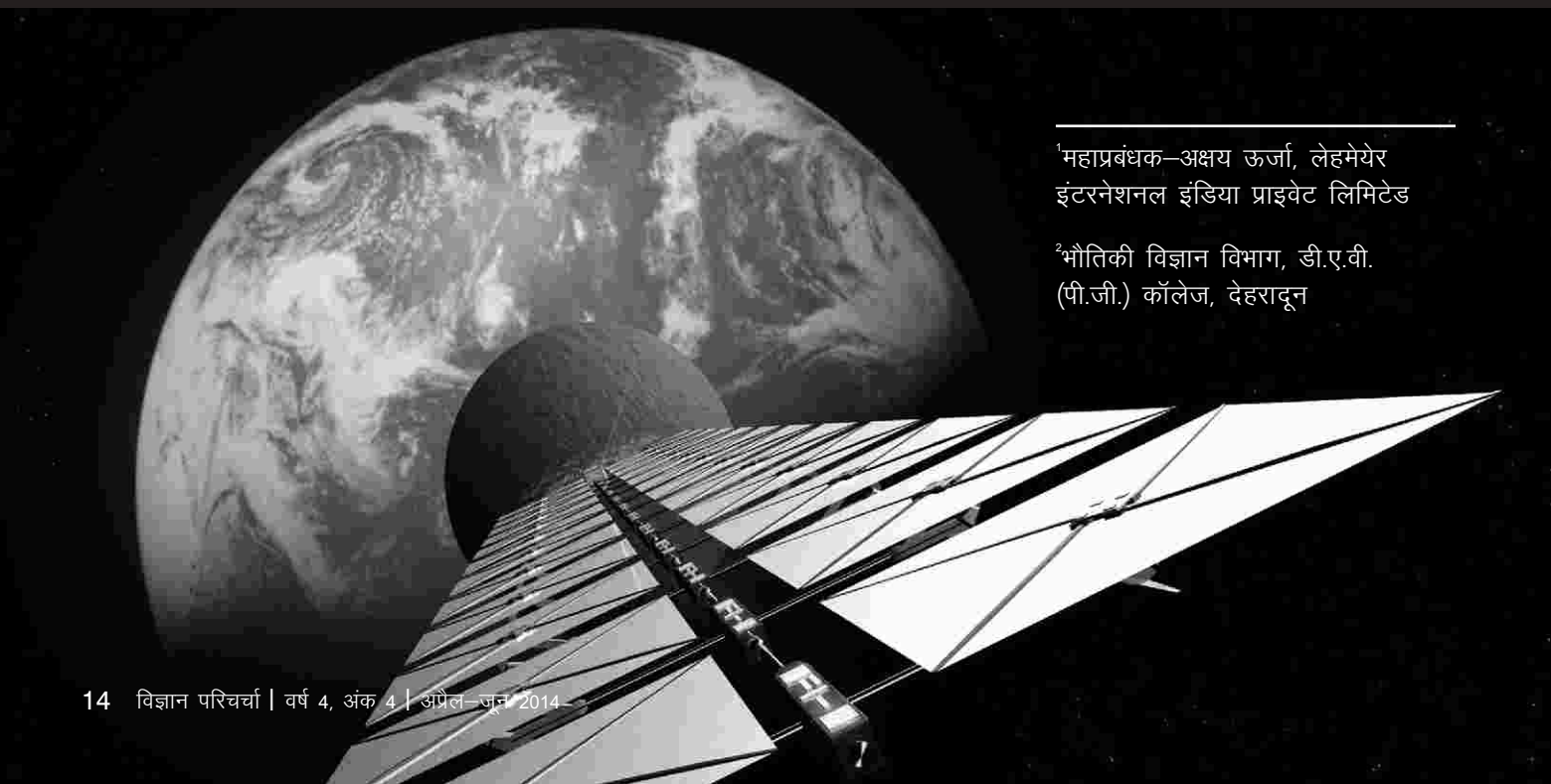

[1]महाप्रबंधक–अक्षय ऊर्जा, लेहमेयेर इंटरनेशनल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड

[2]भौतिकी विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

राष्ट्रीय प्रगति में समुद्री अनुसंधान का अवदान

दुर्गादत्त ओझा

सागरों ने मनुष्य के जीवन एवं इतिहास को सदैव ही प्रभावित किया है। अनादिकाल से ही मानव महासागरों का कई तरीकों से उपयोग करता आ रहा है। हमारे पौराणिक ग्रंथों के अनुसार देवताओं और दानवों ने समुद्र मंथन किया तथा अमरत्व प्राप्त कराने वाले अमृत का पान किया। आज भी हम महासागरों से अनेक खनिज, भोजन एवं ऊर्जा संसाधन प्राप्त कर रहे हैं।

पृथ्वी का लगभग 3610 लाख किलोमीटर (अर्थात् पृथ्वी का 71 प्रतिशत) क्षेत्र सागर है जिसकी औसत गहराई लगभग 3,730 मीटर एवं कुल आयतन लगभग 1,34,70,000 लाख घन किलोमीटर है। महासागरों में सर्वाधिक गहराई वाला क्षेत्र प्रशांत महासागर की मरियानाखाई (11,516 मीटर) है। इसकी तुलना पृथ्वी की उच्चतम चोटी माउंट एवरेस्ट से की जा सकती है जो समुद्रतल से 8,849 मीटर ऊंची है। अपनी विशालता और आवश्यक संसाधनों का विशाल भंडार होने के साथ-साथ महासागर वायुमंडल तथा विश्व की जलवायु को भी नियंत्रित करते हैं।

महासागर अनेक संसाधनों जैसे : खनिज (धातुएं, तेल, प्राकृतिक गैस, रसायन, नमक आदि), भोजन (मछली, झींगर, लॉबस्टर आदि), ऊर्जा (तरंग, जलधाराएँ, ज्वारभाटा आदि) तथा औषधियों के अनन्त भंडार हैं। हम महासागरों का उपयोग परिवहन (जहाजों एवं तेल के टैंकरों में), मनोरंजन एवं रक्षा कार्यो के लिए करते रहे हैं। इतना ही नहीं, मानव महासागरों का उपयोग शहरों का कचरा, औद्योगिक बहिस्राव तथा निरंतर बढ़ती जनसंख्या के कारण होने वाली गतिविधियों के परिणामस्वरूप कृषि में प्रयुक्त उर्वरकों और कीटनाशकों आदि का विसर्जन करने के लिए भी कर रहा है।

इसके अतिरिक्त, महासागर मौसम तथा जलवायु को नियंत्रित करते हैं और अंततोगत्वा पर्यावरण को भी काफी हद तक प्रभावित करते हैं। यह प्रेक्षित किया गया है कि हमारे द्वारा ली जाने वाली सांस की गुणवत्ता भी बहुत कुछ महासागरों एवं वायुमंडल की पारस्परिक क्रियाओं पर निर्भर करती है। दूर या नजदीकी समुद्री अभियानों से हमें यह जानकारी प्राप्त हुई है कि धरती भी किस प्रकार कार्य करती है। समुद्री तल कैसे बने और महाद्वीपों के भाग किस प्रकार लंबे समय में हजारों किलोमीटर खिसके हैं।

महासागरों का विस्तृत अध्ययन वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक एवं अन्यान्य दृष्टिकोणों से अति महत्वपूर्ण ही नहीं वरन् समय की मांग के अनुरूप भी है। वर्तमान सदी में महासागर ही हमारे लिए एक ऐसा स्रोत है जिस पर हम पूर्णतया सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्भर हो सकते हैं। यद्यपि विशाल और गहरे समुद्रों की जानकारी प्राप्त करना अपने आप में चुनौती भरा कार्य है, तथापि वैज्ञानिकों ने अपने अद्भुत सामर्थ्य, शक्ति, साहस और कठिन परिश्रम से इन चुनौतियों पर विजय प्राप्त करने की दिशा में अतुलनीय कार्य किए हैं तथा इस क्षेत्र में प्रगति के चहुंमुखी आयाम स्थापित किए हैं।

हमारा देश आज विश्व के उन अग्रणी देशों की श्रेणी में है जहाँ महासागरीय क्षेत्र में उच्च स्तरीय अन्वेषण कार्य हो रहा है। देश के पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यरत अनेक शोध संस्थानों के निष्णात वैज्ञानिक अपनी विलक्षण प्रतिभा, विवेक एवं प्रखर मेधा शक्ति से पूर्ण दक्षता के साथ सागरीय अनुसंधान कार्य में रत हैं तथा विश्व स्तर पर भारत को महिमा मंडित करने, देश की खाद्य, ऊर्जा, जल आर्थिक क्षेत्र में प्रगति के नये आयाम स्थापित करने में सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। इस दिशा में हैदराबाद स्थित भारतीय राष्ट्रीय महासागर सूचना सेवा केंद्र (Indian National Centre for Ocean Information Services – INCOIS) जो कि इंकॉइस के नाम से प्रख्यात हैं तथा राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान, चेन्नई (Indian Institute of Ocean Technology, Chennai) ने अपनी स्थापना से ही महासागर विषयक बहुमूल्य एवं विलक्षण सूचनाएं प्रदान कर न केवल वैज्ञानिकों वरन् समुद्र पर अपनी जीविका हेतु आश्रित मछुआरों सहित

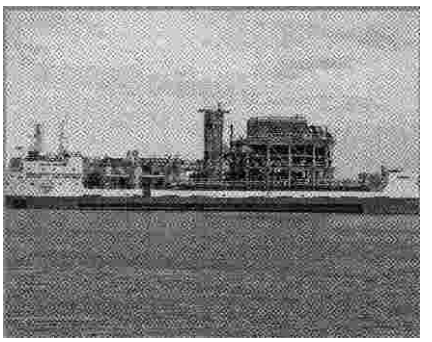

अनेकानेक लोगों को लाभान्वित किया है।

भारतीय राष्ट्रीय महासागर सूचना सेवा केंद्र का प्रमुख लक्ष्य है सूचना प्रबंधन और महासागर मॉडलिंग में प्रणालीबद्ध व संकेन्द्रित अनुसंधान द्वारा दीर्घकालीन महासागरीय प्रेक्षणों एवं निरन्तर सुधारों से समाज, उद्योग, सरकारी संस्थाओं और वैज्ञानिक समुदाय को यथासंभव उच्च स्तरीय महासागरीय आँकड़े, सूचना एवं परामर्शी सेवाएं प्रदान करना।

इंकॉइस, अपनी संगठनात्मक उत्कृष्टता, राष्ट्रीय प्रासंगिकता तथा अंतरराष्ट्रीय उपादेयता के परिप्रेक्ष्य में महासागरीय विज्ञान, वायुमंडलीय विज्ञान, अंतरिक्ष अनुप्रयोग, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी वाले उत्कृष्ट केन्द्रों के साथ परस्पर परिचर्चा एवं नेटवर्किंग ज्ञान के द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान को उपयोगी उत्पादों तथा सेवाओं के रूप में प्रदान कर रहा है।

इंकॉइस में प्रमुखतः चार निम्नांकित अनुसंधान समूह हैं जिनमें निष्णात वैज्ञानिक महासागर विषयक गहन अध्ययन एवं अन्वेषण कार्य में रत हैं। ये है :

1. मॉडलिंग एवं महासागर प्रेक्षण समूह (एमओजी),
2. परामर्शी सेवाएं एवं उपग्रह समुद्र विज्ञान समूह (एएसजी),
3. सूचना सेवाएं एवं महासागर विज्ञान समूह (आईएसजी),
4. कम्प्यूटर संबंधी सुविधाएं एवं वेब आधारित सेवाएं समूह (सीडब्ल्यूजी)।

महासागरीय मॉडलिंग

इंकॉइस द्वारा महासागरीय मॉडलिंग में निम्नांकित प्रयोजनानुसार कार्य किए जाते हैं :

- उपयुक्त समय पर तथा आकाशीय आंकड़ों के आधार पर महासागर की

विगत, वर्तमान तथा भावी दशा का विवरण प्रदान करना।

- वायुमंडलीय मॉडलों के लिए आवेग प्रदान कर मौसम/मानसून तथा जलवायु के पूर्वानुमान में योगदान करना।
- महासागरीय तथा समुद्री पर्यावरण की परिवर्तनशीलता को समझना ।
- समुद्री प्रेक्षण प्रणाली को अनुकूल बनाना।

भारतीय आर्गो प्लव परियोजना

वस्तुतः आर्गो एक अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम है जिसे कि तापमान और लवणता के सामयिक प्रेक्षण लेने के लिए अभिकल्पित किया गया है। इससे ऊपरी समुद्र की संरचना को बेहतर ढंग से समझने तथा जलवायु पूर्वानुमान करने में वृद्धि होगी। विश्व मौसम संगठन (डब्ल्यूएमओ) द्वारा प्राधिकृत अंतरराष्ट्रीय आर्गो परियोजना तथा यूनेस्को की अंतरराष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्था (आईओसी) का उद्देश्य वर्ष 2006 तक 3000 आर्गो फ्लोटों को वैश्विक व्यूह पर तैनात करने की योजना थी जिससे कि 300 कि.मी. X 300 कि.मी. के आकाशीय विभेदन पर वैश्विक व्यूह स्थापित किया जा सके। आर्गो प्रोफाइल फ्लोट से ऊपरी समुद्र के तापमान, लवणता एवं वेग का सामयिक तौर पर निरंतर मॉनिटरन किया जाता है। एआरजीओएस उपग्रह तंत्र द्वारा आर्गो फ्लोट से आँकड़े प्राप्त किए जाते हैं तथा इंटरनेट एवं जीटीएस नेटवर्क द्वारा निर्दिष्ट आँकड़ा केन्द्रों पर विश्व समुदाय को 24 घंटे के भीतर भेजने से पूर्व संसाधित किए जाते हैं। इस परियोजना का आधारभूत लक्ष्य निहित समय में महासागरीय विषयक निःशुल्क आंकड़े उपलब्ध करवाना है।

इंकॉइस द्वारा भारतीय आर्गो परियोजना का कार्यान्वयन संयुक्त रूप से राष्ट्रीय समुद्री अनुसंधान संस्थान (नेशनल इंस्टीट्गूट ऑफ ओशन टेक्नोलाजी, (एनआईओटी), वायुमंडलीय एवं महासागरीय विज्ञान केन्द्र (सीएओएस), भारतीय विज्ञान संस्थान तथा अन्य प्रमुख अनुसंधान संस्थानों की सक्रिय भागीदारी से हुआ है। भारतीय आर्गो परियोजना के तहत 175 आर्गो फ्लोट को उष्ण कटिबंधीय हिंद महासागर में तैनात किया जाना है तथा राष्ट्रीय स्तर पर आर्गो आँकड़ों का अभिग्रहण एवं प्रक्रमण तंत्र स्थापित करना, क्षेत्रीय आर्गो आँकड़ा प्रचलन केन्द्र की स्थापना, सागर आँकड़ा तंत्र के विकास को आत्मसात् करना, आर्गो आँकड़ों का विश्लेषण, उपयोग तथा राष्ट्रीय स्तर पर क्षमता निर्माण करना है।

प्रत्येक आर्गो प्लव तापमान तथा लवणता का रेखाचित्र हर दस दिन में प्राप्त करता है तथा आँकड़ों को उपग्रह द्वारा भेजकर तुरंत जीटीएस द्वारा उपलब्ध करवा दिया जाता है।

आर्गो प्लव (फ्लोट) द्वारा हम समुद्र की विभिन्न गहराइयों पर तापमान की जानकारी एकत्र करते हैं। इस जानकारी से हम ज्ञात कर सकते हैं कि विलवणीकरण संयंत्र के लिए वांछित तापमान वाला जल कितनी गहराई पर उपलब्ध है। यह जानकारी विलवणीकरण संयंत्र की स्थापना की लागत का अनुमान लगाने में उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसके अतिरिक्त आर्गो अनेक अनुसंधान एवं प्रचालन कार्यो में भी उपयोगी है जो इस प्रकार है :

- वर्तमान जलवायु के अवबोध और जलवायु पद्धति में सागर की भूमिका का अध्ययन,
- मौसम के अनुसार अंतर्वर्षीय जलवायु की पूर्व सूचना,
- ऊष्णकटिबंधीय तूफान का पूर्व विचार एवं
- मत्स्य पालन और परितंत्रीय मॉडलिंग।

बढ़ते हुए समुद्री जल स्तर का अवबोध : इंकॉइस ने उपग्रह अल्टीमीट्री का प्रयोग करके पाया कि विश्व के महासागर तथा हिंद महासागर समान दर से बढ़ रहे हैं (3.10 और 3.18 मि.मी./वर्ष)। वर्ष 2003 से 2008 के समुद्र स्तर का आर्गो काल का उसी अवधि से पुनः विश्लेषण करने पर विदित हुआ कि वैश्विक स्तर पर विश्व की मध्य सतह की बढ़ोत्तरी अब धीमी हो गई है (2.01 मि.मी./वर्ष)। इसके विपरीत इस अवधि में हिंद महासागर के बढ़ने की गति दर तेज थी (7.052 $\pm$ 0.6 मि.मी./वर्ष)। आर्गो तथा ग्रेस आँकड़ों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि विश्व के महासागर में तापीय विस्तरण और पानी की बढ़ती हुई मात्रा का योगदान क्रमशः 0.16 $\pm$ 0.6 मि.मी. प्रति वर्ष और 2.01 $\pm$ 0.06 मि.मी. प्रति वर्ष था। इसके विपरीत, हिंद महासागर में तापीय विस्तारण (2.63 $\pm$ 0.3 मि.मी. /वर्ष) कुल समुद्र की बढ़ोत्तरी की दर से लगभग आधा था। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समुद्र का स्तर तापीय विस्तारण और पानी की बढ़ोत्तरी, दोनो कारणों से विश्व के औसत स्तर से अधिक तेज गति से बढ़ रहा है।

मछुआरों के लाभ हेतु परामर्शी (पी.एफ.जेड) सेवाएं

भारत के तटीय क्षेत्रों में रहने वाले लगभग 70 लाख लोग अपनी आजीविका के लिए मछली पकड़ने के व्यवसाय में लगे हुए हैं। मछलियों के जमा होने के संभाव्य क्षेत्रों के बारे में समय पर विश्वसनीय और अल्पकालिक पूर्वानुमान,

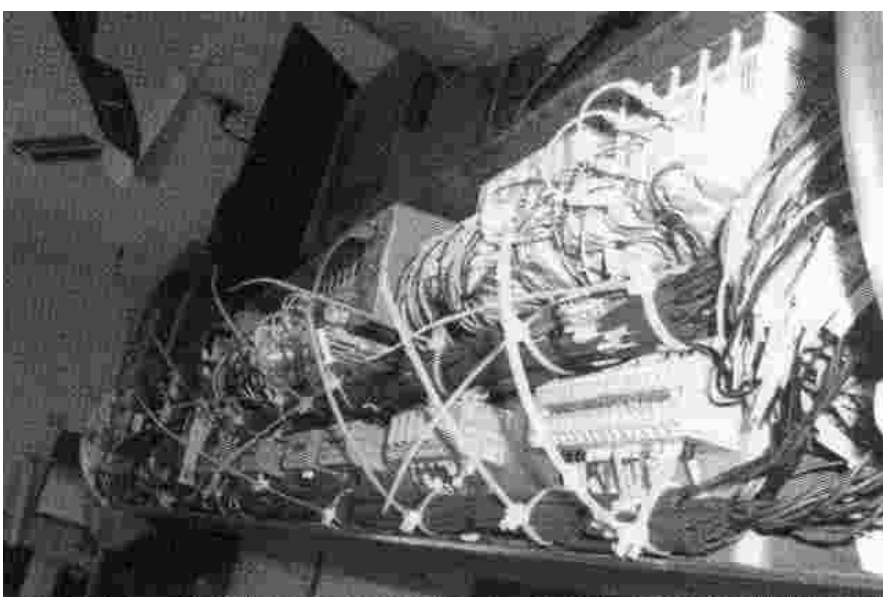

मछलियों के उपलब्ध होने के स्थलों को ढूंढने में लगने वाले समय और प्रयास को कम करने में मछुआरों को लाभ पहुंचाएगा। इस प्रकार उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। समुद्र विकास, अंतरिक्ष एवं मत्स्य विज्ञान के वैज्ञानिकों के संयुक्त प्रयासों से सुदूर संवेदन और जी.आई.एस. तकनीकों से ऐसे अल्पावधि पूर्वानुमान संबंधी सेवा प्रदान करने के कार्य चरम सीमा तक पहुंच गए हैं।

भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह (आईआरएसपी 4) से प्राप्त क्लोरोफिल और अमरीकी एनओएए उपग्रह से प्राप्त समुद्र परत तापमान सूचना इस जानकारी को प्राप्त करने का मूल निवेश है। मछलियों की अधिकता वाले संभावित क्षेत्र, जिनमें समुद्री अग्रभाग, टेढ़े–मेढ़े बहने की प्रक्रिया, भंवर और उत्प्रवाही क्षेत्रों जैसे लक्षण प्रतीत होते हैं, इनको उपग्रह चित्रों से पहचान कर नौचालन चार्टो में उतारा जाता है और संभाव्य मत्स्य क्षेत्रों (पीएफजेड) के रूप में दर्शाया जाता है। वेब–जीआईएस के उपयोग से जानकारी एकत्र करने, उनके विश्लेषण, लक्षणों की जानकारी देने, मानचित्रों को तैयार करने और सूचनाओं के प्रसार में जीआईएस एक बहुत सहज उपस्कर है।

सुदूर संवेदन तकनीक द्वारा मछलियों के लिए अनुकूल तापमान क्रम पहचान कर उनका चयन किया जाता है जिससे उनकी संख्या में वृद्धि हो सके। वस्तुतः तापमान सीधे उनकी चयापचयन दर, बड़े होने, संख्या बढ़ाने और विकास की गति को प्रभावित करता है। वह उनके स्थानांतरण, उनके भौगोलिक और परितंत्रीय फैलाव को भी प्रभावित करता है। कुछ मछलियाँ लगभग 0.030° तापमान परिवर्तनों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं। लार्वा के बढ़ने के लिए आहार के अतिरिक्त उनके जीवित रहने के लिए तापमान भी एक मुख्य और महत्वपूर्ण घटक है। मछली और उसके लार्वा के लिए आहार की उपलब्धता तथा पादक प्लैंक्टॉन उत्पादन की मात्रा का संबंध तापमान के मौसमी परिवर्तनों और प्रकाश की मात्रा से गहराई से जुड़ा है। अतः मछलियों का फैलाव सामान्य तौर पर विद्यमान वातावरणीय स्थितियों, मुख्यतया आहार और तापमान से सम्बन्धित है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर समुद्री मत्स्य

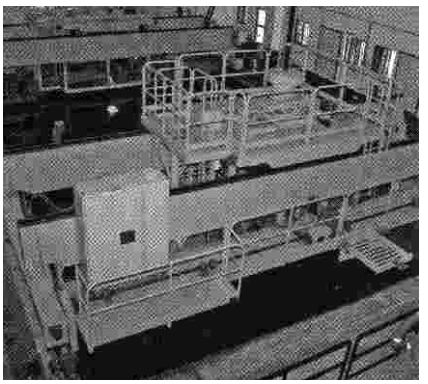

संपदा का पता लगाने में इन सभी समुद्र विज्ञान सम्बन्धी प्राचलों में तापमान और समुद्र रंग (आहार से सम्बन्धित) का व्यापक रूप में उपयोग किया गया है।

इंकॉइस ने गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गोवा, केरल, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, अंडमान–निकोबार और लक्षद्वीप सहित भारत के समूचे तटवर्ती प्रदेशों के 12 खंडों में फैले लगभग 230 क्षेत्रों को फैक्स और टेलीफोन आधारित बहुभाषी (गुजराती, हिंदी, मराठी, कन्नड़, मलयालम्, तमिल, तेलगु, उड़िया और बंगाली) पीएफजेड सूचनाएं प्रसारित की गई।

पीएफजेड संबंधी सूचनाएं ई–मेल तथा वेबसाइट (www.incois.gov.in) पर भी सुलभ करवाई गई हैं। इस प्रकार की सेवाओं से मछुआरों को मछली खोजने में 30 से 70 प्रतिशत तक कम समय लगता है और इसके साथ–साथ डीजल, तेल और बहुमूल्य मानव श्रम में भी बचत होती है। यह प्रेक्षित किया गया है कि जलयानों की संख्या और उसी स्टॉक के प्रयोग के आधार पर मछली पकड़ने में किए गए प्रयासों की इकाई दर में भी सुधार हुआ है। अतः उपग्रह आधारित एसएसटी/क्लोरोफिल युक्त पीएफजेड सूचनाएं कम श्रम से अधिक मछलियां पकड़ने में प्रामाणिक रूप में उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। पीएफजेड लक्षणों को अलग करने और इन सूचनाओं को इंटरनेट और वेब–जीआईएस द्वारा सारे प्रयोक्ताओं को प्रदान करने का यह कार्य अत्यंत ही सराहनीय एवं रोजगारोन्मुख है।

महासागरीय स्थिति का पूर्वानुमान

इंकॉइस, एन.सी.एम.आर.डब्ल्यू.एफ. (नेशनल सेंटर फॉर मीडियम रेंज वेदर फोरकास्टिंग) और इ.सी.एम.डब्ल्यू.एफ. (यूरोपियन सेंटर फॉर मीडियम रेंज वेदर फोरकास्ट्स्) से पूर्वानुमानित हवाओं का प्रयोग करते हुए तरंगों की ऊँचाई और तरंगों की दिशाओं द्वारा बताई गई महासागर स्थिति का पूर्वानुमान करता है। इस सेवा से जहाज पर कार्य करने वाले, मछली पकड़ने वाले, सागर तटों पर उद्योगों, बंदरगाहों और हार्बरों के साथ ही नौसेना, तटीय गार्ड आदि को 2, 5 और 7 दिन पूर्व ही महासागर की स्थिति की पूर्व सूचना मिल जाती है। यह सेवा प्रति दिन वैश्विक (10x10 भूमंडलीय रिजोल्यूशन), आंचलिक (0.2500x0.2500 भूमंडलीय रिजोल्यूशन), तटों के समीप (गुजरात, गोवा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल के लिए 10x10 कि.मी. पर और विनिर्दिष्ट स्थानों पर (पुडुचेरी, तमिलनाडु, महाराष्ट्र) तथा अन्य राज्यों के 52 मछली उतारने वाले केन्द्रों में 6–8 बार दी जाती है।

हाईवेव अलर्ट सेवा

तटीय स्थानों पर रहने वाले समुदायों, विशेषकर मछुआरा समुदाय की निरतंर मांग को दृष्टिगत रखते हुए इंकॉइस ने "उच्च तरंग चेतावनी" या "हाईवेव अलर्ट" नामक एक नया उत्पाद तैयार किया है जिससे समुद्री तूफान या उच्च लहरों की स्थिति के दौरान तटीय क्षेत्रों के पास संभावित उच्च लहरों के बारे में पूर्व सूचना उपलब्ध कराई जा सके। इस प्रणाली को पूर्व में 9–12 नवंबर 2009 को अरब सागर में तूफान "फयान" के गुजरने के दौरान कारवार, कर्नाटक के मछुवारों को उच्च लहरों की स्थिति बताने के लिए आरंभ किया गया था। तत्पश्चात् इस सेवा का 10–15 दिसम्बर 2009 के दौरान बंगाल की खाड़ी के ऊपर और फिर 31 मार्च से 2 अप्रैल 2010 के दौरान उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के तटों पर तूफान "वार्ड" के संबंध में सूचना प्रदान करने के लिए प्रयोग किया गया।

सुनामी तथा तूफानी लहरों की पूर्व सूचना

उदार महासागर का क्रोध है – सुनामी एवं तूफान। वस्तुतः सुनामी (Tsunami) विशाल, तेजी से चलने वाली सागर तरंगें हैं जो सागर तल पर भूकंप के कारण हुए व्यापक परिवर्तन के कारण शुरू होती हैं। कभी–कभी पानी के नीचे भू–स्खलन या ज्वालामुखी के फटने से भी ऐसी स्थिति

बनती है। ये तरंगें लगभग 1000 किलोमीटर प्रति घंटा की गति से चलती है। जब ये तरंगें उथले पानी में पहुंचती है तो इनकी गति धीमी हो जाती है परंतु उनकी ऊँचाई (3–20 मीटर) बहुत बढ़ जाती है और उनके बीच की दूरी कम हो जाती है। ये तटस्थ आबादी को तथा सम्पत्ति को अत्यधिक नुकसान पहुँचाती हैं।

भारत सरकार के पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय ने देश में महासागरीय आपदाओं से हो रहे भंयकर नुकसान तथा देश के तटीय क्षेत्र पर लगभग 40 करोड़ की क्षति को दृष्टिगत रखते हुए यह निश्चित किया कि इस क्षेत्र में शीघ्र ही सूचना केन्द्र की स्थापना नितांत आवश्यक है। इस दृष्टि से भारत सरकार ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, अंतरिक्ष विभाग, सी. एस.आई.आर. तथा पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के शीर्ष वैज्ञानिकों की अनुशंसा पर सुनामी और तूफानी लहरों की पूर्व चेतावनी हेतु इंकॉइस में एक सूचना तंत्र वर्ष 2006 में स्थापित किया।

इंकॉइस में यह राष्ट्रीय सुनामी पूर्व चेतावनी केन्द्र (एनटीईडब्ल्यूसी) 24x7 अर्थात् निरन्तर 24 घंटे कार्य करता है। यह केन्द्र भूकंप सम्बन्धी सूचना भारतीय मौसम विज्ञान विभाग, सुनामी पूर्व सूचना केन्द्र, जापान, मौसम विज्ञान एजेन्सी पेसिफिक भारतीय सर्वेक्षण, राष्ट्रीय महासागर प्रौद्योगिकी संस्थान एवं अन्य अंतरराष्ट्रीय स्टेशनों से ज्वार मापन आँकड़े प्राप्त करता है। पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय द्वारा जारी मानक प्रचालन विधि का आई.टी.डब्ल्यू.सी. (इंटरनेशल ट्रेवल वेदर कैलक्युलेटर) द्वारा कार्यान्वयन किया जाता है। यह व्यवस्था सही ढंग से कार्य कर रही है।

इंकॉइस वी सेट उपग्रह से एन.आई.ओ.टी. द्वारा सूचनाएं प्राप्त करता है। आपदा प्रबंधन के वास्तविक निजी नेटवर्क को एक हिस्से के रूप में इंकॉइस में, उच्च शक्ति का एन्टीना तथा विडियो कॉन्फ्रेसिंग उपकरण से सुसज्जित किया गया है जिसे देश के 22 राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों में आँकड़ों, वीडियो तथा ऑडियो से जोड़ा गया है।

इस केन्द्र ने अप्रैल 2009 से मार्च 2010 तक 165 बड़े भूकंपों का पता लगाकर इसकी शीघ्र सूचना उपलब्ध करवाई। इंकॉइस में इस प्रकार की विश्व स्तरीय अत्याधुनिक सुविधा प्राप्त है।

इस केन्द्र ने 29 सितंबर 2009 को समोआ द्वीप क्षेत्र में आए भूकंप का 17:48:10 (यूटीसी) पर 4 मिनट में पता लगाया और आरंभिक बुलेटिन/ई–मेल 10 मिनट में प्रसारित कर दी कि "इस सुनामी से हिंद महासागर के क्षेत्र को किसी भी प्रकार का खतरा नहीं है"।

इसी प्रकार इस केंद्र ने 30 सितंबर 2009 को दक्षिण सुमात्रा, इंडोनेशिया में आये भूकंप का 10:16:07 (यूटीसी) पर 4 मिनट में पता लगाया और प्रथम बुलेटिन/ई–मेल भूकंप से पूर्व 6 मिनट में प्रसारित कर दिया। इसका दूसरा बुलेटिन भूंकप आने के 38 मिनट बाद मॉडल द्वारा तैयार की गई परिस्थितियों का परीक्षण करने के पश्चात् जारी किया गया जिसमें भूकंप की अद्यतन जानकारी उपलब्ध करवाई गई तथा सूचना दी गई कि "मॉडल सिम्युलेशन्स में भारतीय तट के जल स्तर में परिवर्तन के कोई महत्वपूर्ण संकेत नहीं है। अतः भारतीय क्षेत्र में सुनामी का खतरा नहीं है।

राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान समुद्र अनुसंधान के निम्नांकित क्षेत्रों में अनवरत अनुसंधान कार्य कर रहा है :–

- समुद्री ऊर्जा तथा स्वच्छ जल,
- गहरे सागर की प्रौद्योगिकी एवं खनन,
- तटीय तथा पर्यावरणीय इंजीनियरी,
- समुद्री उपकरण तथा
- द्वीपों के लिए महासागर विज्ञान और प्रौद्योगिकी

इसके अतिरिक्त यह संस्थान पोत प्रबंधन केंद्र एवं राष्ट्रीय आंकड़ा प्लव कार्यक्रम का भी संचालन करता है। इस संस्थान

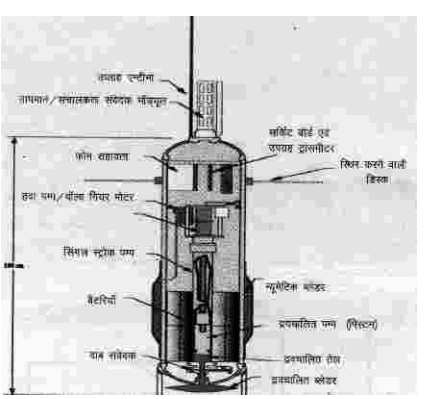

के चेन्नई में नीलंगराई तथा अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में पोर्ट ब्लेयर में द्वीपों के लिए समुद्र विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी गतिविधियों पर आधारित दो संचालित केंद्र भी है।

सागर से पेयजल एवं ऊर्जा

स्वच्छ पेयजल न केवल भारत वरन् संपूर्ण विश्व की ज्वलंत समस्या है तथा यह प्रत्येक जीव की आधारभूत आवश्यकता भी है। परंतु इसके अत्यल्प स्रोत हैं और उपभोक्ता बहुत अधिक हैं, इसलिए कम आपूर्ति होने के कारण ऐसा कहा जाता है कि अगला विश्व युद्ध पानी के लिए होगा। तो क्या इस जटिल समस्या का कोई समाधान नहीं है? आवश्यकता है पीने का पानी मिले जो लोगों को अपरंपरागत साधनों से उपलब्ध कराया जाए। परंतु यह ध्यान में रहे कि ऐसे पानी को कम खर्च में जनसामान्य को उपलब्ध करवाया जाये। अतः हमें देखना है कि तटीय क्षेत्रों में समुद्र के खारे जल को किस प्रकार लवणरहित करके प्राप्त किया जा सकता है।

समुद्री जल को विलवणीकृत करने और मीठा पानी तैयार करने के लिए कई विलवणीकरण प्रक्रियाएं अपनाई गई हैं। इन विलवणीकरण प्रौद्योगिकियों में आसवन, बहुचरण फ्लैश (एम.एस.एफ.) वाष्प संपीडन, सौर आसवन, प्रतिवर्ती परासरण, विद्युत अपोहन आयन विनिमय तथा प्रशीतित विलवणीकरण शामिल हैं। वस्तुतः विलवणीकरण प्रक्रियाएं भी दो प्रकार की होती हैं – तापीय प्रणालियां, जिनमें जलवाष्प उत्पन्न करने के लिए इसके क्वथनांक बिंदु तक जल को गरम करना होता है तथा दूसरी झिल्ली प्रक्रियाएं, जिनमें स्वच्छ जल उत्पन्न करने के लिए जल अथवा लवण को हिलाने के लिए एक सापेक्ष रूप से पारगम्य झिल्ली का उपयोग किया जाता है। राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान, चेन्नई ने निम्न या न्यून तापमान तापीय विलवणीकरण (Low temperature thermal desalination) या एल.टी.टी.डी. प्रणाली का डिजाइन बना कर इसे तैयार किया तथा चालू भी कर दिया है। वस्तुतः एल.टी.टी.डी. एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा निम्न निर्वात स्थितियों के अंतर्गत गरम सतही समुद्री जल को तेजी से प्रवाहित करते हुए तथा ठंडे गहरे समुद्री जल का उपयोग करके वाष्प को संघनित करके स्वच्छ जल तैयार

किया जाता है।

प्रयोगशाला और फील्ड दोनों में काफी प्रयोग करने के पश्चात् राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान ने मई 2005 में समुद्री जल से स्वच्छ जल उत्पन्न करने के लिए कावारट्टी लक्षद्वीप में 1,00,000 लीटर प्रतिदिन की क्षमता वाला एक प्रौद्योगिकी प्रदर्शन विलवणीकरण संयंत्र चालू किया है। यह विश्व में अपनी किस्म का पहला संयंत्र है।

उष्णकटिबंधीय हिंद महासागर में गरम सतही जल और गहराई में ठंडा जल अधिक पाया जाता है। राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान ने फ्लैश वाष्पीकृत सतही जल के संघनन के लिए मल्टीस्टेज फ्लैश वाष्पीकरण की अपेक्षा 300 मीटर गहराई में स्थित ठंडे उपसतही जल का उपयोग किया था। इस राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान के वैज्ञानिकों ने गहन अन्वेषण द्वारा ज्ञात किया कि विलवणीकरण की एल.टी.टी.डी. विधि पर्यावरण अनुकूल है और यह जल कृषि और वातानुकूलन के लिए भी लाभदायक है।

राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान ने अपने सफल प्रयोग द्वारा तुतीकोरिन से 40 किलोमीटर दूर बार्ज (नाव) पर बने समुद्री जल से स्वच्छ जल तैयार करने के लिए एल.टी.टी.डी. प्रौद्योगिकी का सफल प्रदर्शन किया है तथा जल की गुणवत्ता भी उत्तम किस्म की पाई है। प्रमुखतः इस प्रौद्यौगिकी में दो मुख्य उपकरण फ्लैश चैम्बर और संघनित्र होते हैं। फ्लैश चैम्बर में निर्वात स्थिति में गरम समुद्री जल का वाष्पीकरण होता है और वाष्प संघनक में संघनित होकर मीठे जल में परिवर्तित हो जाती है।

भारत की मुख्य भूमि में तटीय आबादी की अधिकांश आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्यौगिकी संस्थान उच्चतर क्षमता वाले संयंत्रों अर्थात् 10 से 100 लाख लीटर प्रतिदिन की क्षमता वाले संयंत्रों का डिजाइन बनाने, इनका विकास करके इन्हें संस्थापित करने तथा प्रदर्शित करने के कार्य में रत है।

विलवणीकरण में आर्गो प्लव की उपादेयता

वस्तुतः विलवणीकरण प्रक्रिया में हम समुद्री जल में से लवणता या घुलनशील लवणों को पृथक करते हैं। विलवणीकरण संयंत्र की परिकल्पना के पूर्व हमें समुद्री जल की लवणता और तापमान के बारे में जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। इस संदर्भ में "आर्गो प्लव", जिसका निर्माण राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्यौगिकी संस्थान तथा इंफॉइस द्वारा किया गया है, बहुत उपयोगी है। आर्गो का प्राथमिक लक्ष्य है सागर के अंदर 2000 मीटर ऊपर की ओर तापमान और लवणता को मापना ।

आर्गो प्लवों द्वारा हम समुद्र की विभिन्न गहराइयों पर तापमान की जानकारी एकत्र कर सकते हैं। इस जानकारी से हम ज्ञात कर सकते हैं कि विलवणीकरण संयंत्र के लिए वांछित तापमान वाला जल कितनी गहराई पर उपलब्ध है। यह जानकारी विलवणीकरण संयत्र की स्थापना की लागत का अनुमान लगाने में उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उदाहरण के तौर पर इस जानकारी से हम वांछित तापमान वाले जल की गहराई प्राप्त करके उसकी संयंत्र से दूरी माप सकते हैं, जिससे संयंत्र में उपयोग होने वाले उपकरणों, जैसे पाइप की लंबाई ज्ञात कर सकते है।

रोसब तथा गैस हाइड्रेट

राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्यौगिकी संस्थान के वैज्ञानिकों ने मॉस्को के इ.डी.बी.ओ.ई. (एक्स्पेरिमेंटल डिजाइन ब्यूरो ऑफ ओशनोलॉजिकल इंजीनियरिंग) के संयुक्त तत्वावधान में विद्युत चालित सुदूर संचालनीय अधोजलीय (Under water) यान (रोसब) बनाया है। यह यान अत्याधुनिक सुदूर संचालनीय यान (आर.ओ.वी.) टेथर प्रबंधन प्रणाली (टी.एम.एस) पुनर्प्राप्ति प्रणाली (एल.ए.आर.एस.) उच्चवोल्टेज, उच्च आवृत्ति का ऊर्जा परिवर्तन व संप्रेषण प्रणाली, डाटा टेलीमिट्री व ग्रहण प्रणाली (हार्डवेयर) समेकित नौचालन प्रणाली (सॉफ्टवेयर) से सुसज्जित है।

राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्यौगिकी संस्थान के वैज्ञानिकों ने जुलाई 2008 में सागर निधि जलयान पर (चेन्नई समुद्री तट के समीप) प्रमोचन (Launching) तथा पुनर्प्राप्ति प्रणाली की शुरूआत की। इसमें कर्षण तथा भंडारण कार्य एक साथ एक ही समय संपन्न हुए। इस प्रयोग से भविष्य में सामुद्रिक अन्वेषण में नई दिशा मिलेगी।

गैस हाइड्रेट, जो ऊर्जा के भावी स्रोत हैं, के विकास में भी इस संस्थान के वैज्ञानिकों ने बहुत कार्य किया है। इसी क्रम में स्वायत्त मध्यवर्तन प्रणाली (Autonomous coring system) विकासाधीन है। इससे भारतीय परिप्रेक्ष्य में गैस हाइड्रेट की अवस्थिति का प्रमाणन सिद्ध हो जाएगा। इस कार्य के लिए अमेरिका की मैसर्स विलियम्सन एंड एसोशिएट्स कंपनी का सहयोग भी लिया गया है।

सामुद्रिक सेंसर एवं इलेक्ट्रॉनिक्स

वस्तुतः सागरीय जल के नीचे लगाए जाने वाले समस्त उपकरण ध्वनिकी पर आधारित होते है। अतः इसके लिए जलाधीन या जल के नीचे लगाए जाने वाले ध्वनिकी सेंसर बनाना अत्यावश्यक समझा गया। राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्यौगिकी संस्थान के सामुद्रिक सेंसर तथा इलेक्ट्रोनिक्स समूह ने इस क्षेत्र में दक्षता अर्जित की है। इस संस्थान के वैज्ञानिकों ने समुद्री जल के नीचे फाइबर ऑप्टिक कनेक्टर का विकास किया है तथा इसका सफल उत्पादन एवं परीक्षण भी किया है। इसी प्रकार सुनामी पूर्व चेतावनी प्रणाली के लिए समुद्री तल के नीचे के दाब को ज्ञात करने हेतु तलीय दाब रिकार्डर (Bottom pressure recorder-B.P.R.) का विकास भी किया है। इस रिकार्डर का विकास स्वदेशी तकनीक से किया गया है।

गहन जल प्रौद्योगिकी व महासागरीय उत्खनन

राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्यौगिकी संस्थान, चेन्नई सागरतल से बहुधात्विक पिंडिकाए उत्खनित करने की प्रौद्योगिकी के विकास हेतु जर्मनी के सीजेन विश्वविद्यालय के इंस्टिट्यूट ऑफ कॉन्स्ट्रक्शन के साथ सक्रिय रूप से कार्य कर रहा है। क्रालर आधारित उत्खनन मशीन और एक लचीली उत्खनन प्रणाली (Flexible riser system) को विकसित कर 500 मीटर जल की गहराई में जल के नीचे उत्खनन का कार्य, पंपिग परिचालन तथा चलनीयता प्रकार युक्ति (Maneuverability) के साथ मार्च–अप्रैल 2006 में सम्पन्न हुआ है। वर्तमान में विद्यमान क्रालर में सुधार किया जा रहा है एक संग्राहक चूर्णक प्रणाली का पिंडिकाओं को उठा कर उन्हें चूर्ण करने हेतु उपयोग किया जा रहा है जिससे

उन्हें समुद्र सतह पर रहने वाले आश्रय जलयान (Mothership) को भेजा जा सके।

मिट्टी के गुणों का परीक्षण करने में सक्षम एक स्वस्थाने (इन सीटू) मृदा परीक्षक (Soil tester) को विकसित किया गया है तथा हिंद महासागर के मध्य भाग में (सेन्ट्रल इंडियन ओशन बेसिन) 5200 मीटर गहराई में नवम्बर 2006 में इसका सफल परीक्षण भी किया जा चुका है। इस मृदा परीक्षक के भार तथा आकार को कम व छोटा करने के प्रयास जारी है जिससे इसका दीर्घकालीन परिचालन हो सके। इन अनुसंधान परिणामों के आधार पर सागर की 6000 मीटर गहराई में उत्खनन संभव हो सकेगा ।

सागर निधि एक प्रौद्योगिकी प्रदर्शक जलयान है और यह पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के चालू और नए कार्यक्रमों के लिए गहन सागर उत्खन्न, सुदूर संचालनीय यान, स्वायत्त जलाधीन यान, उपकरण प्रौद्योगिकी प्रदर्शन कार्यक्रमों को आधार देने के लिए सर्वेक्षण एवं अनुसंधान के कार्यो में प्रभावी भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त महासागर अनुसंधान एवं बुई (Bouy) टेडर वेसल, सागर मंजूषा यान, एवं बार्ज सागर शक्ति यान भी महासागरीय अन्वेषण हेतु कार्यरत है।

महासागर अन्वेषण जैसे विशाल बहुपयोगी क्षेत्र में हमारे देश के अनुसंधान संस्थानों में हो रहे शोध कार्य विश्व पटल पर प्रगति के नए आयाम स्थापित करेंगे ।

"गुरूकृपा"
ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा,
जोधपुर–342001

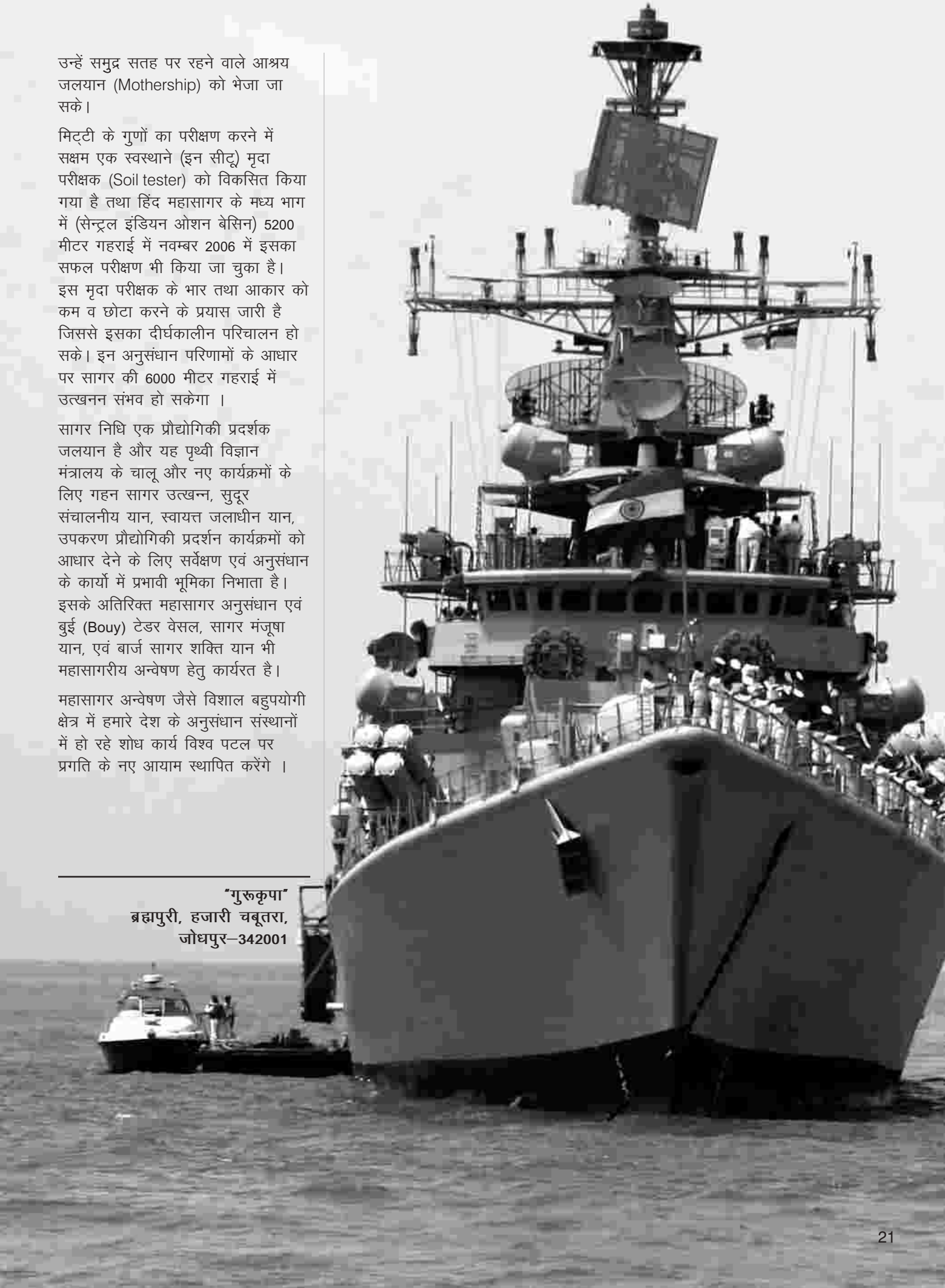

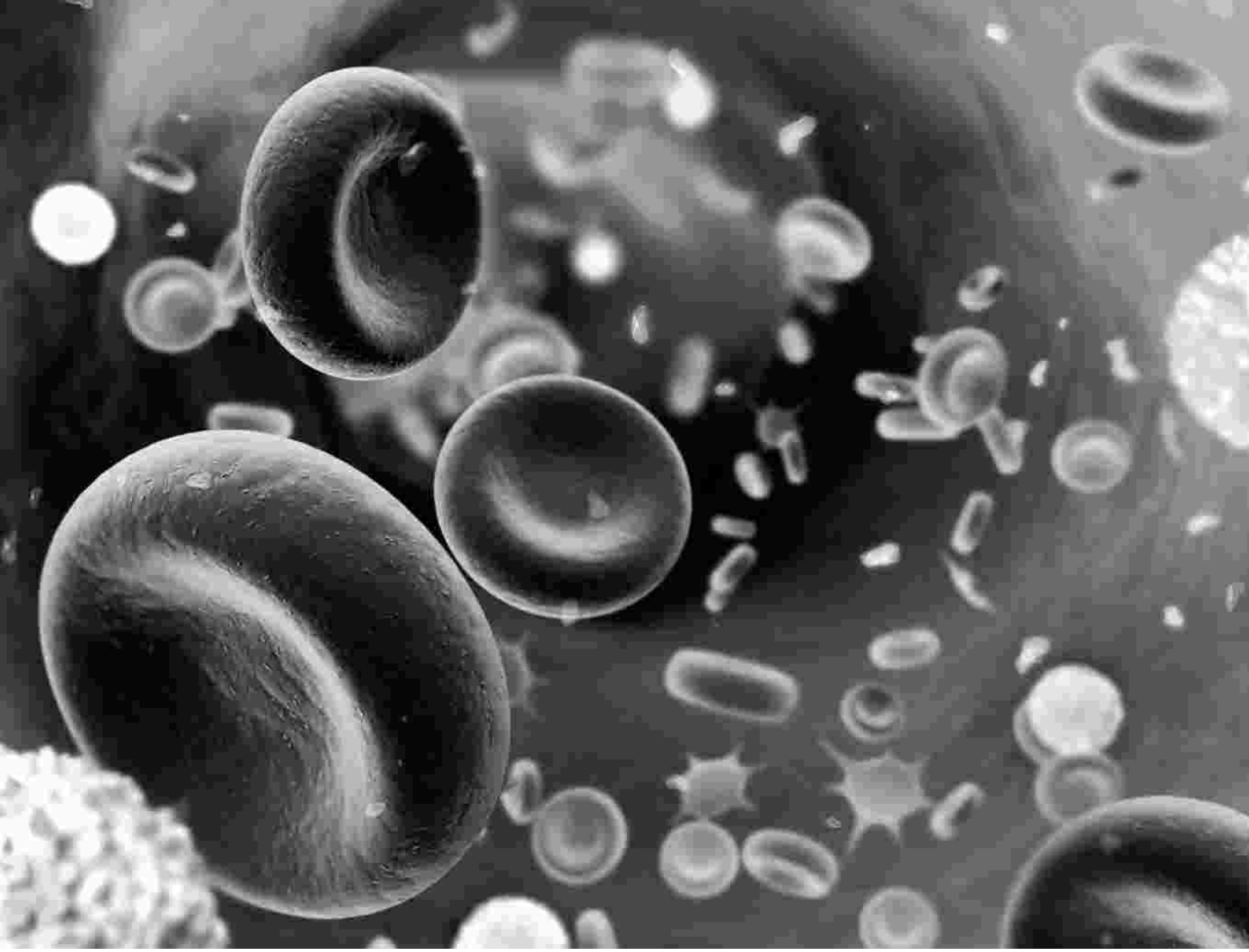

महिलाओं में रक्ताल्पता
समस्या और समाधान

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

1. रक्ताल्पता (एनीमिया) रोग शरीर में खून की कमी के कारण उत्पन्न होता है। वास्तविकता यह है कि जब शरीर की लाल रक्त कोशिकाएँ (आर.बी.सी.) अस्वस्थ हो जाती हैं तब शरीर में खून की कमी हो जाती है। लाल रक्त कोशिकाओं के अस्वस्थ होने का कारण हीमोग्लोबिन नामक एक प्रोटीन है। हीमोग्लोबिन में लौह प्रचुर मात्रा में विद्यमान होता है। जब हीमोग्लोबिन में लौह की कमी हो जाती है तब शरीर रक्ताल्पता रोग से ग्रस्त हो जाता है। यहाँ एक तथ्य को जान लेना आवश्यक है कि हीमोग्लोबिन नामक प्रोटीन ऑक्सीजन (प्राणवायु) का वाहक होता है।

वर्तमान में विश्व की 30 प्रतिशत जनसंख्या रक्ताल्पता की चपेट में है। भारत में रक्ताल्पता से महिलायें अधिक संख्या में पीड़ित होती हैं। एक डेढ़ साल की बच्ची से लेकर गर्भवती महिलायें, प्रसव के बाद 80–90 प्रतिशत माताएँ और वृद्धायें– सभी रक्ताल्पता की शिकार हो सकती हैं। नगरों मे रहने वाली 13 से 20 वर्ष की लड़कियाँ भी रक्ताल्पता से ग्रस्त रहती हैं। इसका मुख्य कारण है संतुलित भोजन के स्थान पर "डिब्बा बंद" भोजन का प्रयोग और मोटापे से बचने के लिए शरीर की भोजन की जो आवश्यकता है उससे बहुत कम भोजन करना। लड़कियाँ प्रायः "स्लिम" (छरहरी) दिखने के लिए ऐसा करती हैं। रक्ताल्पता के अनेक कारण हो सकते

हैं किन्तु प्रमुख है हीमोग्लोबिन में लौह की कमी। लेकिन रक्ताल्पता रोग से ग्रस्त हो जाने के बाद घबराने की आवश्यकता नहीं हैं क्योंकि लौह की कमी को आसानी से पूरा किया जा सकता है।

थकावट, सांस लेने में कठिनाई, दिल का जोर–जोर से धड़कना और बार–बार संक्रमण की चपेट में आते रहना, रक्ताल्पता के लक्षण हैं। खून की जाँच के बाद जो तथ्य उभरकर सामने आता है, वह है हीमोग्लोबिन का रोगग्रस्त होना। ऐसी स्थिति में एक सहज–सा प्रश्न उठता है कि रक्ताल्पता से बचाव के लिए क्या किया जाये?

सबसे पहले तो परिवार के मुखिया का दायित्व है कि आय के अनुसार घर में भोजन की उचित व्यवस्था रखे। यह आवश्यक नहीं है कि भोजन अधिक खर्च वाला हो। आवश्यक है कि भोजन संतुलित हो और खाने–पीने वाली वस्तुओं में लौह की आवश्यक मात्रा विद्यमान हो। परिवार का कोई भी व्यक्ति कुपोषण का शिकार हो सकता है, किन्तु भारत में महिलायें अच्छा भोजन पति और बच्चों को खिला देती हैं और कुपोषण के कारण स्वयं रक्ताल्पता से ग्रस्त हो जाती हैं।

रक्ताल्पता से बचाव या छुटकारा पाने के लिए विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों और महिलाओं के लिए निम्नलिखित भोजन और पेय की संस्तुति गई है–

1. नवजात बच्चों के लिए माँ का दूध सबसे अच्छा होता है, किन्तु स्तनपान छुड़ा दिए गए बच्चों के लिए अथवा 6 माह की आयु के बाद के बच्चों को लौह मिश्रित भोजन खिलाना प्रारंभ कर देना चाहिए और साथ ही साथ विटामिन–सी भी देना चाहिए। इससे रक्ताल्पता निकट नहीं आ सकती। स्मरण रहे गाय के दूध में लौह की मात्रा न्यून होती है इसलिए केवल दूध से लौह की आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती है।
2. 13–14 से 19–20 वर्ष की लड़कियों के लिए लौह महत्वपूर्ण पोषक की भूमिका निभाता है, क्योंकि इस वय में "मासिक धर्म" प्रारम्भ होता है।
3. हरी शाक–सब्ज़ियों, दालों और सेमवर्गीय बीजों यथा मटर, चना, फ्रेंचबीन आदि से शाकाहारी महिलायें लौह प्राप्त कर सकती हैं।
4. संतरे का रस, टमाटर, आँवला और पत्तागोभी में विटामिन–सी की अधिक मात्रा विद्यमान होती है। इनके सेवन से लौह तत्व का शोषण करने की शरीर की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।
5. लौकी, नेनुआ (तोरई) जैसी सब्ज़ियों का रस, बथुआ का रस, हरी धनिया की पत्तियाँ और नींबू का रस मिला कर सप्ताह में कम से कम तीन बार एक–एक गिलास पीना चाहिए।
6. डबल रोटी और अनाजों/खाद्यान्नों के पैकेटों पर जो कुछ लिखा रहता है उसे ठीक से पढ़ें और सुनिश्चित करें कि उनमें लौह और विटामिन उचित मात्रा में मिलाये गए हैं या नहीं । ऐसे पैकेट तभी खरीदें जब देख लें कि लौह और विटामिन उचित मात्रा में मिलाये गए हैं।
7. फलों में सेब, केला, संतरा, आम, आलू बुखारा, अंगूर, स्ट्राबेरी (रसभरी) का प्रयोग करें।
8. तरबूज़ भी लाभकारी होता है।
9. चाय का सेवन कम करें क्योंकि चाय लौह तत्व के शरीर द्वारा अवशोषण में बाधा पहुँचाती है और लौह के अवशोषण की मात्रा में कमी आ जाती है।
10. लम्बी अवधि तक खाली पेट न रहें और "जंक फूड" के नियमित सेवन से बचें। इससे रक्ताल्पता रोग में वृद्धि होती है।
11. यदि खूनी बवासीर (पाइल्स) से ग्रस्त हों या "मासिक धर्म" में रक्तस्राव हो रहा हो तो रक्ताल्पता की अवस्था में तुरंत चिकित्सक की सलाह के अनुसार ही खान–पान की व्यवस्था करें।

ध्यान रहे, रक्ताल्पता रोग घातक भी हो सकता है इसलिए इसकी उपेक्षा न करें। यदि आप रक्ताल्पता रोग से ग्रस्त हैं तो घबरायें नहीं, क्योंकि साधारणतया थोड़ी–सी सावधानी बरतने से रक्ताल्पता रोग से छुटकारा मिल जाता है।

अनुकम्पा,
वाइ 2 सी, 115/6
त्रिवेणीपुरम, झूंसी, इलाहाबाद – 19

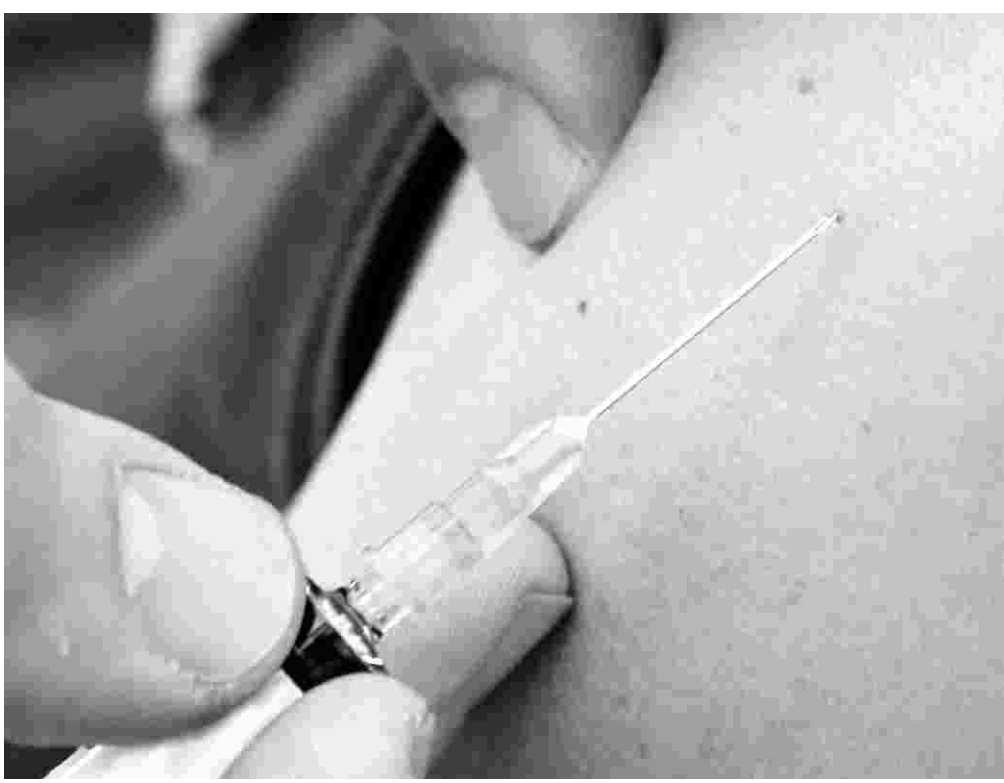

अभी क्षय रोग के साथ संघर्ष जारी है

मंजुलिका लक्ष्मी

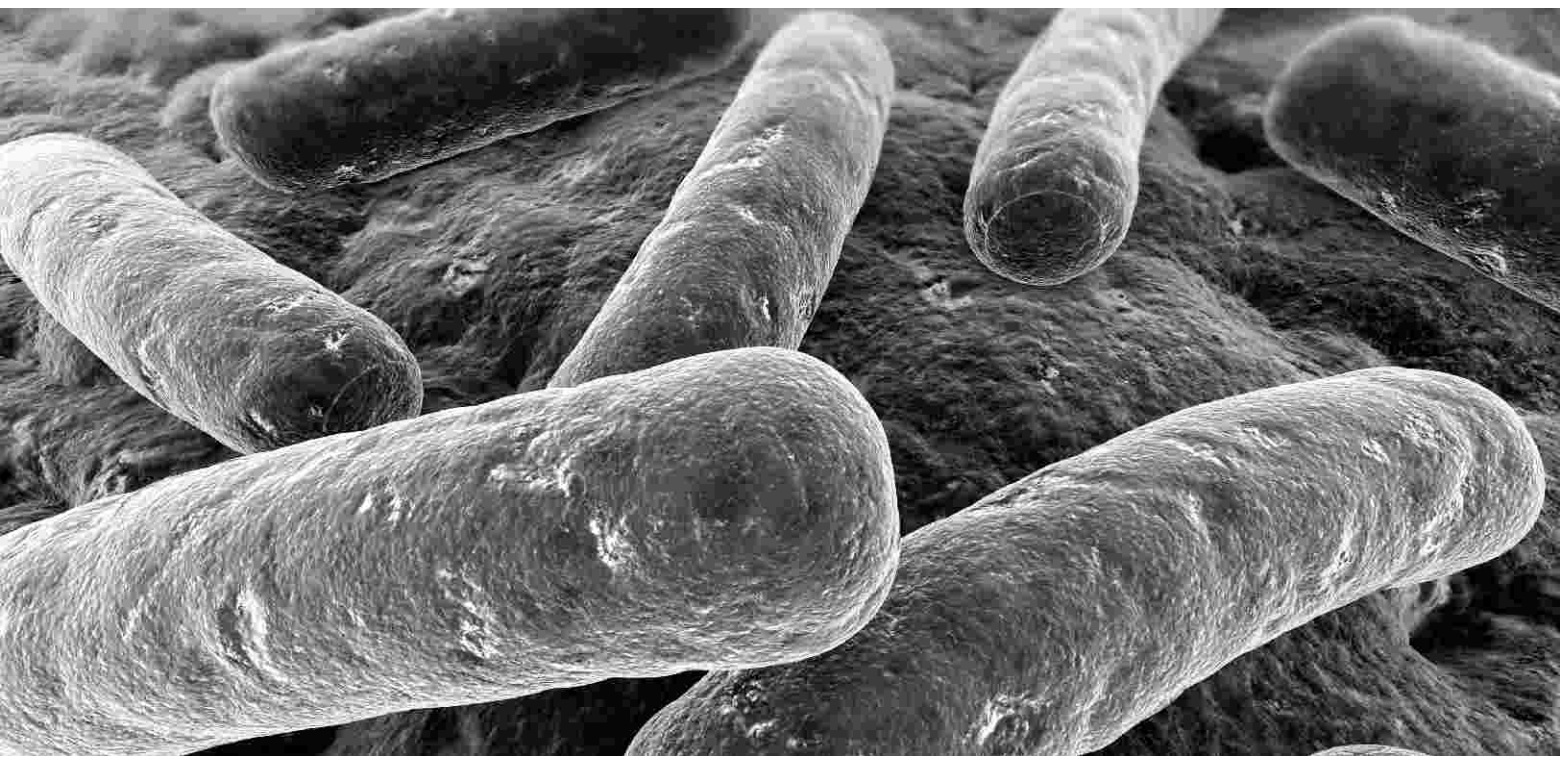

विद्वानों की मान्यता है कि क्षय रोग धरती पर उतना ही पुराना है जितनी मानव सभ्यता। निओलिथिक युग के प्रागैतिहासिक मानवावशेषों और मिस्र देश की ममियों के परीक्षण से यह सिद्ध हो चुका है कि क्षय रोग उस काल में भी विद्यमान था। ऋग्वेद में भी एक ऐसी ऋचा पाई गई है जिसमें यक्ष्मा रोग से मुक्ति की प्रार्थना की गई है। प्राचीन चीनी सभ्यता,पारसी धर्मावलम्बियों और यूनानी सभ्यता के काल में भी क्षय रोग के उल्लेख मिलते हैं।

यह एक विडंबना ही कही जायेगी कि यद्यपि प्लेटो और एरिस्टॉटल ने रोग की गंभीरता को समझा पर उससे लड़कर उस पर विजय प्राप्त करने और उसका उपचार ढूँढ़ने का प्रयास नहीं किया। इस प्रयास का श्रीगणेश हुआ रोमन सभ्यता के काल में जब सेल्सस और गैलेन (Celsus and Galen) के नेतृत्व में क्षय की चिकित्सा ढूँढ़ने की दिशा में पहले चरण बढ़ाए गए। मध्यकालीन अरब देशों और क्रिश्चियन यूरोप में ऐसे प्रयास सतत जारी रहे परंतु इस दिशा में पहली उल्लेखनीय उपलब्धि मिली अट्ठारहवीं शती के अन्त की ओर जब इंग्लैंडवासी रिचर्ड मॉर्टन ने अपनी युगान्तरकारी पुस्तक 'थिसियोलाजिया' (Phthisiologia) का प्रकाशन करवाया। इस पुस्तक के आधार पर लोगों के मध्य इस रोग के विषय में ज्ञान बढ़ा। 1781 से 1826 के मध्य फ्रांसीसी रेने थियोडोर हैसिंथ लेनेक (Rene Theodore Hyacinthe Laennec) के आगमन ने प्रथम बार क्षय रोग के पूरे परिदृश्य को ही बदल दिया। अब गंभीरता से रोग के वास्तविक कारण के ज्ञान की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। इसके बाद का मार्ग लंबा अवश्य था पर द्वार खुल चुका था। रोग की प्रकृति और मानव की जिजीविषा के मध्य एक गंभीर संघर्ष की यह भूमिका थी।

2000 वर्ष पूर्व जब पहली बार प्राचीन यूनान में एरिस्टॉटिल ने क्षय को एक संक्रामक रोग बताया था– उस बिन्दु से चलकर 1720 ई0 में सर्वप्रथम बेंजामिन मार्टेन नामक वैज्ञानिक ने यह बताया कि क्षय रोग का कारण 'बैसिलस' नामक एक रोगाणु है। इसी के पश्चात् जर्मन डॉ0 राबर्ट कॉक ने वर्षों के अनथक परिश्रम और अपने एकाकी शोध से क्षय रोग के जीवाणुओं को अलग करके सूक्ष्मवीक्षण यंत्र के नीचे पहचानने और उन रहस्यमय जीवाणुओं का छायाचित्र उतारने में सफलता पाई। इन रोगाणुओं को पहचान कर रॉबर्ट कॉक ने इनके लिए एक वैक्सीन बनाने की ओर ध्यान दिया और इसमें उन्हें आंशिक सफलता भी मिली।

इस अविजेय वैज्ञानिक की स्मृति में आज भी क्षय रोग को 'कॉक्स डिजीज' के नाम से जाना जाता है।

क्षय रोग के इस शताब्दियों के इतिहास और इसके साथ चलते मानव संघर्ष के बाद भी आज स्थिति यह है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे संपूर्ण विश्व की आपातकालीन समस्या का दर्जा दिया है। भारत में प्राप्त आँकड़ों के अनुसार हमारे देश में आज भी प्रति मिनट एक व्यक्ति क्षय या टी.बी. के कारण अपनी जान गँवा बैठता है।

क्षय या ट्यूबरकुलोसिस या टी.बी. जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है एक ऐसा रोग है जिसके जीवाणु मनुष्य के शरीर को लगातार जर्जर करते रहते हैं। शरीर भार का धीरे–धीरे कम होता जाना, बिना परिश्रम के भी अत्यधिक थकान, अपने चतुर्दिक के कार्य व्यापार और अपने निजी कार्यों में रुचि का न होना, भूख में कमी, त्वचा का पीलापन, लंबे समय तक खाँसी और कफ का आना तथा लगातार मंद या कभी कभी तीव्र ज्वर का होना इस रोग के विशिष्ट लक्षण हैं। इस रोग के जीवाणु मानव के फेफड़ों पर आक्रमण करते हैं और जब रोगग्रस्त व्यक्ति खाँसता या छींकता है तब हवा के माध्यम से यह रोगाणु अन्य व्यक्तियों तक पहुँचकर उसे भी रोगग्रस्त कर देते हैं। आज यह संपूर्ण विश्व का सबसे बड़ा मृत्युप्रदायक रोग बन चुका है। पहले तो इसे निर्धनता और कष्टदायक जीवनस्थितियों से जोड़कर देखा जाता था परंतु आज यह धनी उच्च वर्ग में भी फैल रहा है। वैश्विक स्तर पर हर तीन में से एक व्यक्ति क्षय के सुप्त प्रकार से ग्रस्त है और पूरे जीवनपर्यन्त यह आशंका बनी रहती है कि उसके अंदर के यह सुप्त रोगाणु कभी भी सक्रिय हो सकते हैं।

भारत की सवा सौ करोड़ की जनसंख्या में लगभग बीस लाख लोगों पर क्षय रोग का आक्रमण होता है और इसमें पाँच लाख लोगों को जान गँवानी पड़ती है। सबसे दुखद तथ्य यह है कि इस क्षयग्रस्तता का सबसे बड़ा कारण निर्धनता, अशिक्षा, उदासीनता और मधुमेह तथा एच वाई वी ग्रस्त लोगों की बढ़ती संख्या है ।

आज विश्व के समक्ष क्षय रोग से जो सबसे बड़ा संकट है वह है उपलब्ध औषधियों के प्रति रोग के जीवाणुओं का प्रतिरोधी (Drug resistant) बन जाना। भारत सरकार ने 1997 में राष्ट्रीय क्षय रोग नियन्त्रण कार्यक्रम के अन्तर्गत क्षय से लड़ने के लिए डॉट्स विधि कार्यक्रम को प्रारंभ किया था। जगह जगह पर खोले गये ये डॉट्स केन्द्र सरकार की ओर से क्षय रोगियों को मुफ्त चिकित्सा के लिए औषधि उपलब्ध कराते हैं और कहीं कहीं रोगी को वहाँ स्वयं नियमित रूप से जाकर दवा खानी पड़ती है। छः महीने की अवधि इसकी चिकित्सा के लिए पर्याप्त मानी गई है। जब रोगी पर इन औषधियों का समुचित प्रभाव नहीं पड़ता और औषधियाँ उस पर निष्क्रिय रहती हैं तब स्थिति गंभीर हो जाती है।

इस समय बहुऔषधि प्रतिरोधी क्षय प्रकार वाले सर्वाधिक रोगी भारत में ही हैं जिनकी संख्या लगभग 73,000 है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में क्षय के पाये जाने वाले नये रोगियों में 2.1% बहुऔषधि प्रतिरोधी हैं और 15% ऐसे हैं जिनमें धीरे धीरे बहु औषधि प्रतिरोधिता विकसित हो रही है। विश्व स्तर पर नये क्षय रोगियों में 3.3% में बहुऔषधि प्रतिरोधकता होती है। प्रति वर्ष खोजे जाने वाले 4.4 लाख बहुऔषधि प्रतिरोधी रोगियों में 1.4 लाख की तो मृत्यु हो जाती है। बहु औषधि प्रतिरोधी प्रकार (Multi drug resistant-MDR) के अतिरिक्त एक व्यापक औषधि प्रतिरोधी (Extensive drug resistant -XDR) प्रकार के रोगियों की संख्या भी अब धीरे धीरे बढ़ रही है। जहाँ बहु औषधि प्रतिरोधक प्रकार दवाओं के कुप्रबन्धन के कारण जन्म लेते हैं वहीं व्यापक औषधि प्रतिरोधी प्रकार उन बैक्टीरिया के कारण होते हैं जो रिफैम्पसिन और आइसोनिएजिड तथा फ्लूरोक्लोरोक्विन और द्वितीय स्तर की एन्टी टी बी इन्जेक्टिबल दवाओं के प्रतिरोधी होते हैं। क्षय के ये प्रकार सामान्य छ मास की चिकित्सा के लिए प्रतिक्रिया नहीं दिखाते हैं। ये रोगी रोगमुक्त होने में दो वर्ष से अधिक समय ले लेते हैं। क्षय की इस प्रकार की दवायें कम शक्ति वाली, अधिक आविषालु और अधिक महँगी होती हैं।

क्षय रोग के उपचार के लिए दी जाने वाली औषधियों के दो प्रमुख भाग हैं। प्रथम भाग में उन औषधियों की गणना होती है जो क्षय रोग के जीवाणुओं को मारने में सक्षम होती हैं जिन्हें बैक्टीरिसाइडल ड्रग्स की संज्ञा दी जाती है। इनमें प्रमुख हैं रिफैम्पिसिन, आइसोनिस्एजिड, स्ट्रेप्टोमाइसिन तथा पायराजिनामाइड। इनमें रिफैम्पिसिन और आइसोनिस्एजिड की भूमिकायें बहुत महत्वपूर्ण हैं और प्रमुख रूप से यह दोनों सरकारी डॉट्स कार्यक्रम की नींव मानी जाती हैं।

क्षय की औषधियों का दूसरा भाग वह है जो क्षय जीवाणुओं की वृद्धि को नियन्त्रित करके रोग को बढ़ने से रोकता है इन्हें बैक्टीरिओस्टेटिक औषधियों की श्रेणी में रखा जाता है। इस भाग की प्रमुख औषधियाँ इथेम्ब्यूटॉल, फ्लूरोक्यूनोलोन्स तथा एथिओनामाइड हैं जो जीवाणु की कोशिकाओं और उनके डी एन ए आदि पर क्रियाशील होकर उसकी वृद्धि को रोकती हैं।

क्षय के उपचार में सबसे पहला चरण है संभावित रोगी के थूक व बलगम की जाँच तथा फेफड़ों का एक्सरे जिनके द्वारा रोग का निश्चित निदान किया जा सके तथा रोग किस चरण में है इस बात की पुष्टि की जा सके। रोग की जाँच सामान्यतया थूक के परीक्षण से हो जाती है पर कुछ स्थितियों में रोगी के मवाद, सेरिब्रल स्पाइनल फ्लुइड (सी.एस.एफ.) या ऊतक आदि का भी परीक्षण करना आवश्यक हो जाता है ।

उपचार प्रारंभ करने पर चिकित्सक द्वारा यह चेष्टा की जाती है कि रोगी को सर्वप्रथम रोग की संक्रामक अवस्था से मुक्त कर दिया जाये। संक्रामकता से मुक्त होने के बाद रोगी अपने रोग को दूसरों तक स्थानान्तरित करने में असमर्थ हो जाता है। इसके उपरान्त रोगी को रोग मुक्त करने का अभियान प्रारंभ होता है। इसमें पूर्वोल्लिखित दवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि क्षय रोग की चिकित्सा में दवाओं को नियमित रूप से और निर्धारित लंबी अवधि (छ से नौ मास या विशेष स्थितियों में दो वर्ष तक भी) तक लेना नितान्त आवश्यक है। दवाओं की नियमितता के संबंध में बरती गई लापरवाही का सीधा अर्थ है रोग को पुनः आमन्त्रण देना। कई बार निर्धनता और आर्थिक समस्यायें भी दवाओं को बीच में बंद कर देने पर विवश कर देती हैं। परंतु दवाओं को रोगमुक्त होने के पूर्व बंद करने पर जब क्षय के जीवाणु पुनः आक्रमण करते हैं तो उनमें औषधि के लिए प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। यह स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक होती है। ऐसी स्थिति वाले रोगी एक्वायर्ड ड्रग रेजिस्टेंस अथवा सेकेंडरी ड्रग रेजिस्टेंस वाले रोगी होते हैं। कुछ रोगियों के थूक की जाँच की अवधि में ही जीवाणुओं की कुछ कालोनी में परिवर्तन आ जाता है। ये रोग की ट्रान्जिशनल ड्रग रेजिस्टेंस वाली

स्थिति है। रोग की सबसे संकटपूर्ण स्थिति तब होती है जब वह मल्टी ड्रग रेजिस्टेंस प्रदर्शित करता है। इस स्थिति में रिफैम्पिसिन और आइसोनिएजिड नामक दोनो प्रमुख दवाएँ रोगी के रोग जीवाणुओं पर अप्रभावी सिद्ध होती हैं । इनके साथ मिलाकर दी जाने वाली अन्य दवाएँ भी निष्क्रिय सिद्ध होती हैं। ऐसी स्थिति में रोगी को निश्चित मृत्य के चंगुल से बचा पाना असंभव हो जाता है। औषधि प्रतिरोधक रोग की चरमावस्था को एक्सट्रीम मल्टी ड्रग रेजिस्टेंट क्षय का नाम दिया गया है। मल्टी ड्रग रेजिस्टेंस की अवस्था में उपचार को बीच में छोड़ देने पर जीवाणुओं में यह आत्यंतिक प्रतिरोधकता उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्था में रिफेम्पिसिन आइसोनिएजिड, फ्लूरोक्यूनोलोन्स तथा क्षयरोग की एमीकासीन, कैप्रियोमाइसीन, तथा कैनामाइसीन जैसी इंजेक्शन द्वारा दी जाने वाली औषधियाँ प्रभावहीन हो जाती हैं। औषधियों की यह प्रतिरोधकता जीन उत्परिवर्तन,जीवाणु में आर.एन.ए. पॉलिमरेज एन्जाइम का आवश्यकता से अधिक उत्पादन तथा एन्जाइम द्वारा दी जाने वाली एन्टीबायोटिक की संरचना में परिवर्तन और उसके ह्रास जैसे अनेक कारणों से उत्पन्न होती है ।

यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि औषधि प्रतिरोधकता वाले क्षय रोगियों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। ऐसे रोगी स्वयं तो रोग की भयानकता झेलते ही हैं अपने संपर्क में आने वाले दूसरे रोगियों को भी संक्रमित करते हैं। इन रोगियों की चिकित्सा 24 से 27 महीनों तक चलती है। सरकार द्वारा बहुऔषधि प्रतिरोधी क्षय रोगियों की चिकित्सा के लिए डॉट्स प्लस कार्यक्रम चलाया जाता है। इसमें रोगी को एडमिट भी करते हैं और क्षय के नियमित उपचार के समाप्त होने पर पुनः रोग के आक्रमण की आशंका पर भी चिकित्सा दी जाती है।

आज एच आई वी के साथ संयुक्त होकर क्षय रोग अत्यंत घातक रूप ले रहा है। जिस रोगी में दोनों का आक्रमण होता है वहाँ दोनों व्याधियाँ एक दूसरे को बढ़ाने के लिए उत्तरदायी होती हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार इन दोनों के संयुक्त प्रभाव से 2011 में पूरे विश्व में लगभग 4,30,000 लोगों की मृत्यु हुई। भारत की विडंबना यह है कि यहाँ क्षय रोगियों में केवल 32% लोग ही इस बात को जानते हैं कि वे एच आई वी ग्रस्त हैं या नहीं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट बताती है कि पूरे विश्व के 3 करोड़ 30 लाख एच आई वी ग्रस्त लोगों में लगभग एक तिहाई क्षय से पीड़ित जन हैं। एच आई वी पीड़ित लोगों द्वारा क्षय से संक्रमित होने की संभावनायें भी सामान्य लोगों की अपेक्षा कई गुना अधिक होती है।

लगभग यही बात मधुमेहग्रस्त व्यक्तियों के विषय में भी सत्य है। हमारे अपने देश में 6 करोड़ से अधिक लोग मधुमेह की चपेट में हैं । इनके विषय में भी विश्व स्वास्थ्य संगठन का यही मत है कि मधुमेहग्रस्त लोगों में क्षयरोग के दौरान मृत्यु या चिकित्सा के उपरान्त रोग के पुनराक्रमण की आशंका सामान्य से बहुत अधिक है।

भारत में सरकारी स्तर पर क्षय को सूचनीय रोगों की श्रेणी में रखा गया है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक सरकारी या व्यक्तिगत चिकित्सालय या चिकित्सक द्वारा क्षय के हर रोगी की सूचना सरकार को देनी आवश्यक है।

यद्यपि आज भी क्षय रोग की वैक्सीन के नाम पर हमारे पास 100 वर्ष पूर्व आविष्कृत बी सी जी वैक्सीन (Bacille-Calmette-Guerin) ही उपलब्ध है तथापि शीघ्र निदान के अनेक नये परीक्षण पिछले कुछ वर्षों में अस्तित्व में आये हैं। इन परीक्षणों से निश्चित तौर पर कुछ ही घंटों में क्षय रोग की पुष्टि करना आज संभव हो गया है। आज देश के आठ शहरों में जीन एक्सपर्ट डिवाइस (Gene Xpert device) के केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। इसमें विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा संस्तुत एक कार्टिज बेस्ड न्यूक्लिक एसिड एम्प्लिफिकेशन टेस्टिंग (Cartridge Based Nucleic Acid Amplification Testing) संपादित की जाती है। यह उपकरण स्थापित करना और उसे कार्य में लाना दोनों ही सरल हैं। इसके साथ ही साथ इसकी कार्यक्षमता पूर्व परीक्षणों से सात गुना अधिक है। चिकित्सकों के अनुसार यह उपकरण पूर्णतः एकीकृत है और अत्यंत शीघ्रता और कुशलता से माइकोबैक्टीरिअम ट्यूबरकुलोसिस को पहचान सकता है। साथ ही यह थूक से सीधे रिफैम्पिसिन प्रतिरोधी उत्परिवर्तनों का भी शीघ्रता से पता लगा सकता है। क्षय रोग के प्रकोप से बचने के लिए सर्वप्रथम चरण है लोगों में इसके स्वरूप के प्रति जागरूकता पैदा करना। विशेषकर निर्धन वर्ग और तथाकथित आम जन के मध्य इस रोग की अधिकाधिक जानकारी का प्रचार करना आवश्यक है। इस दिशा में सरकार की ओर से चलाया जाने वाला डॉट्स तथा डॉट्स प्लस अभियान एक सराहनीय कदम है।

क्षय रोग पर नियन्त्रण के लिए कुछ व्यावहारिक कदम भी उठाये जाने बहुत आवश्यक हैं– यथा सार्वजनिक स्थानों में खुले आम थूकने पर कड़ा प्रतिबन्ध होना चाहिए। यदि किसी को शारीरिक आघात पहुँचाना अपराध है तो सार्वजनिक रूप से सिगरेट पीना या थूकना भी आस पास के व्यक्तियों को मौत के मुँह में ढकेलने जैसा गंभीर अपराध है। सरकारी स्तर पर औषधियों और अस्पतालों की व्यवस्था के समान ही आवश्यक है आम जनता की आर्थिक और दैनन्दिन जीवन की स्थिति में भी सुधार लाना जिसमें इस घातक रोग के जीवाणुओं को पनपने का अवसर ही न मिल सके। इसके अतिरिक्त आज की स्थितियों में सबसे प्रमुख और आवश्यक है प्रत्येक वयस्क या बच्चे की समय समय पर नियमित चिकित्सकीय जाँच । इस पक्ष की हमारे देश में सबसे अधिक अवहेलना की जाती है। इसके कारण एक बड़ी सीमा तक आर्थिक हैं किन्तु विचारणीय यह है कि तथाकथित शिक्षित वर्ग में भी इसके प्रति जागरूकता नहीं है और एक गहरी उदासीनता है ।

अन्ततः मानव ने प्रागैतिहासिक काल से 21वीं शती तक की यात्रा पूरी कर ली है। अतः आज भी उस समय की भाँति रोगों को उदासीनतापूर्ण रवैये के साथ भाग्य मान कर स्वीकार कर लेना न तो उसका कर्तव्य है न समय की माँग। रोगों के साथ पूरी जागरूकता और शक्ति के साथ विजय पाना ही मानवीय अभिवृत्ति है।

वाई–2–सी,115/6
त्रिवेणीपुरम्,झूँसी
इलाहाबाद–211019

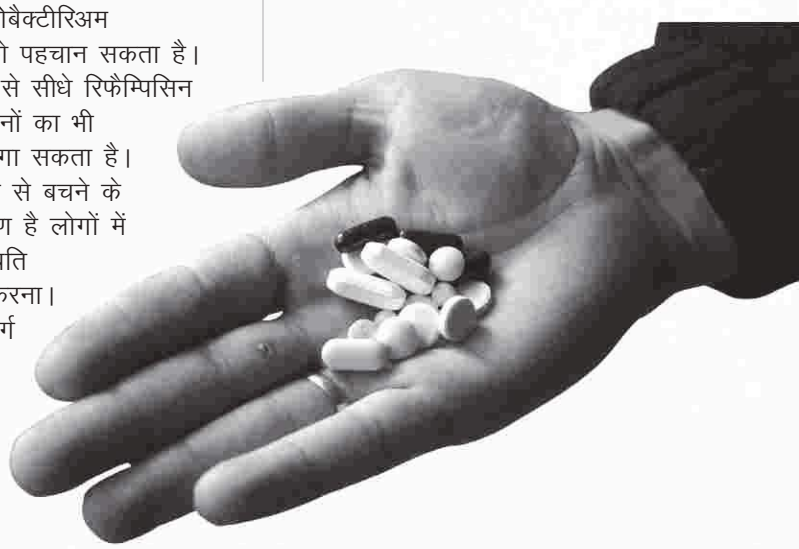

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग

(अप्रैल–जून, 2014)

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद

महानिदेशक की कलम से

परिषद के प्रकाशन 'विज्ञान परिचर्चा' का वर्ष 2014 का द्वितीय अंक आपके सम्मुख है। त्रैमास (अप्रैल– जून, 2014) की अवधि विभिन्न वैज्ञानिक गतिविधियों व महत्वपूर्ण आयोजनों से परिपूर्ण थी जो कि वैज्ञानिकों एवं विद्यार्थियों के लिए अत्यधिक ज्ञानवर्धक सिद्ध हुयी है।

परिषद द्वारा इन तीन माह में विशेष रूप से अलग–अलग संस्थाओं के साथ मिलकर विभिन्न कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। अप्रैल माह में उत्तराखण्ड की जैव विविधताः संरक्षण एवं सर्वंधन विषय पर लोकप्रिय व्याख्यान का आयोजन किया गया, पृथ्वी दिवस को ज्ञानवर्धक दिवस के रूप में मनाया गया एवं बौद्धिक सम्पदा अधिकार पर कार्यशाला का आयोजन किया गया। माह मई विभिन्न कार्यक्रमों में व्यस्त रहा जिसमें मुख्य रूप से कैंसर के इलाज में कारगर नैनो मेडिसीन पर व्याख्यान प्रस्तुत किया गया। जून के माह में विशेष रूप से परिषद के लिए भव्य कार्यक्रम नासी की दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया।

इस त्रैमास में माह अप्रैल में दिनांक 08–10 तक परिषद के वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय प्रतिनिधि के रूप में University of Applied Science, Dresden, Germany द्वारा आयोजित कार्यशाला में प्रतिभाग किया।

आगामी अवधि में परिषद द्वारा अनेक कार्यक्रम प्रस्तावित है। पाठकों के सुझाव व सम्मतियों का स्वागत है।

(विजय कुमार ढौंडियाल)
महानिदेशक

इस संस्करण में

- उत्तराखण्ड की जैव विविधता संरक्षण एवं सर्वधन
- पृथ्वी दिवस
- बौद्धिक सम्पदा अधिकार पर कार्यशाला
- कैंसर के इलाज में कारगर नैनो मेडिसीन
- यूकॉस्ट द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय प्रतिनिधित्व
- डॉ डी. पी. उनियाल, वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय प्रतिनिधित्व
- Governance in S&T प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रतिभाग
- समस्त राज्य में विश्व बौद्धिक सम्पदा अधिकार दिवस का आयोजन

उत्तराखण्ड की जैव विविधता संरक्षण एवं सर्वधन

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, देहरादून द्वारा विज्ञान धाम, झाझरा स्थित परिषद मुख्यालय में दिनांक 17 अप्रैल, 2014 को एक लोकप्रिय व्याख्यान का आयोजन किया गया जिसमें राज्य के सुप्रसिद्ध पर्यावरणविद् श्री जगत सिंह चौधरी 'जंगली' ने उत्तराखण्ड की जैव विविधता : संरक्षण एवं सर्वधन विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

श्री जगत सिंह चौधरी 'जंगली', ग्राम कोटमल्ला, जिला रूद्रप्रयाग, पर्यावरणविद् होने के साथ–साथ राज्य में ग्रामीण प्रबन्धन एवं वृक्षारोपण विषयों पर भी कार्य कर रहे हैं। 02 हैक्टियर उबड़–खाबड़ जमीन को वन–खेती के रूप में तैयार करना, विभिन्न ऊँचाईयों पर उगने वाले 56 प्रजातियों के चालीस हजार वृक्षों वाला वन निर्मित करना तथा अपने 15 वर्षो के अथक प्रयासों से नगदी कृषि जैसे – अदरख, हल्दी, चाय की पैदावार हेतु एक वन तैयार किया जाना इनके प्रमुख कार्य हैं। इन कार्यो के लिए इन्हें राष्ट्रीय इंदिरा वन मित्र पुरस्कार से भी नवाजा गया है।

अपने संबोधन में श्री जगत सिंह चौधरी 'जंगली' ने बताया कि मनुष्य के जिन्दगी जीने के तरीके विभिन्न हो सकते हैं परन्तु इस हेतु स्वच्छ हवा, पानी, पेड़–पौधों तथा जमीन की आवश्यकता समान है। पुरखो के द्वारा सहेजी गयी प्रकृति के संरक्षण तथा संवर्धन की आज आवश्यकता है, इन्हें दूषित कर अथवा इन्हें भूल कर हम अच्छी जिन्दगी नहीं जी सकते। इस हेतु हमें प्रकृति को गहराई से समझने की जरूरत है। उन्होनें बताया कि वे सन् 1980 से पैड़–पौधों के संरक्षण, फल एवं खाद के उत्पादन, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा सर्वधन आदि विषयों को केन्द्रीत कर अपने जल–जंगल को बचाने का कार्य कर रहें हैं। अपने प्रस्तुतिकरण में उन्होनें अपने द्वारा किये गये कार्यो से उपस्थित प्रतिभागियों को अवगत कराया तथा गौरैया पक्षी, मधुमख्खी, गिलेहरी, गैढ़ी आदि विलुप्त प्रजाति/पौधों पर विस्तृत जानकारी उपलब्ध करायी। अपने प्रस्तुतिकरण में उन्होनें जैव विविधता, प्रकृतिक संसाधन, जल संरक्षण, वृक्षारोपण आदि विषयों पर विस्तारपूर्वक अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होने आधुनिकता के नाम पर हो रहे विकास पर तंज करते हुये कहा कि मानव के क्रियाकलापों से आज जलवायु भी बीमार पड़ने लगी है, अतः आज आवश्यकता है कि हमारे प्रयास इसके निदान के हों।

कार्यक्रम की अध्यक्षता यूकॉस्ट के महानिदेशक, श्री विजय कुमार ढ़ौडियाल, आई0ए0एस0 ने की। उनके द्वारा श्री जगत सिंह चौधरी जी द्वारा किये गये उत्कृष्ट कार्यों की सराहना की गई। उन्होने बताया कि विषम परिस्थिति तथा संसाधनों के अभाव में जगत सिंह जी ने जो कार्य अपने क्षेत्र में किए है वो असल जिन्दगी में सीखने योग्य हैं। उन्होने कहा कि आज आवश्यकता है वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं से बाहर आयें और उत्तराखण्ड में माइक्रो क्लाईमेट इन्जीनियर्स की भांति कार्य करें जिस तरह जंगली जी ने वैज्ञानिक पद्धति से प्रकृति से संरक्षण एवं संवर्धन को प्रतिपादित किया है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता यूकॉस्ट के महानिदेशक, श्री विजय कुमार ढ़ौडियाल, आई0ए0एस0 ने की। उनके द्वारा श्री जगत सिंह चौधरी जी द्वारा किये गये उत्कृष्ट कार्यों की सराहना की गई। उन्होने बताया कि विशम परिस्थिति तथा संसाधनों के अभाव में जगत सिंह जी ने जो कार्य अपने क्षेत्र में किए है वो असल जिन्दगी में सीखने योग्य हैं। उन्होने कहा कि आज आवश्यकता है वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं से बाहर आयें और उत्तराखण्ड में माइक्रो क्लाईमेट इन्जीनियर्स की भांति कार्य करें जिस तरह जंगली जी ने वैज्ञानिक पद्धति से प्रकृति से संरक्षण एवं संवर्धन को प्रतिपादित किया है।

पृथ्वी दिवस

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद एवं उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र द्वारा संयुक्त रूप से दिनांक 23 अप्रैल, 2014 को पृथ्वी दिवस का आयोजन राजीव गांधी नवोदय विद्यालय, देहरादून में किया। इस अवसर पर यूकॉस्ट के महानिदशक वी0के0 ढौंडियाल ने कहा कि पृथ्वी के संरक्षण में युवाओं को सक्रिय भूमिका निभाने की आवश्यकता है साथ ही हिमालयी क्षेत्र में ग्लोबल वार्मिंग व इसके प्रभाव तथा भूंकपीय ज्ञान को बढ़ावा देने की जरूरत है। इसके लिए उन्होंने शिक्षण संस्थाओं में व्यापक कार्य, प्रशिक्षण व जागरूकता बढ़ाने की कार्ययोजना समझाई। नेशनल रिसर्च डेवलपमेंट कॉरपोरेशन के अध्यक्ष एवं प्रबंधक निदशक डॉ0 राजेन्द्र डोभाल ने पर्यावरण बिगड़ने से हिमालय क्षेत्र की जैवविधिता पर हो रहे दुष्प्रभावों पर प्रकाश डाला। दून विश्वविद्यालय के कुलपति वीके जैन ने ग्रीन हाउस इफेक्ट, उसके रोकथाम व प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपभोग द्वारा प्रदेश के विकास में सहभागिता के लिए आह्वान किया। इस अवसर पर स्कूली छात्र–छात्राओं के लिए प्रकृति पर आधारित स्लोगन, वाद–विवाद, निबंध व पोस्टर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार पर कार्यशाला

बौद्धिक सम्पदा अधिकार के अवसर पर उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद व एन0आर0डी0सी0 के संयुक्त तत्वाधान में दिनांक 26 अप्रैल, 2014 को एक दिवसीय कार्यशाला आयोजित की गयी। ग्राफिक एरा विश्वविद्यालय में आयोजित कार्यशाला में विभिन्न विश्वविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों व शोध संस्थानों के लगभग 100 प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया। 'आर्थिक विकास एवं समृद्धि के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकार का महत्व' विषय पर आयोजित कार्यशाला में विभिन्न बिन्दुओं पर चर्चा की गयी एवं कापीराइट और पेटेंट विधि की जानकारी दी गयी। बौद्धिक संपदा अधिकार दिवस पर हुई इस कार्यशाला में कापीराइट रजिस्ट्रेशन की विधि बताई गई। यह भी बताया गया कि कापीराइट रजिस्ट्रेशन क्यों जरूरी है। इस मौके पर इंडियान पेटेंट सिस्टम के विभिन्न पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया। बताया गया कि यह कैसे प्राप्त किया जाता है।

इससे पूर्व कार्यक्रम का उद्घाटन मुख्य अतिथि राष्ट्रीय अनुसंधान एवं विकास निगम (एनआरडीसी) के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक डॉ0 राजेन्द्र डोभाल ने किया। उन्होंने कहा अगर बौद्धिक संपदा को संरक्षित नहीं किया गया तो हम वैश्विक परिदृश्य में पिछड़ते जाएंगे। कार्यक्रम के तकनीकी सत्र में तीन व्याख्यान भी हुए।

कैंसर के इलाज में कारगर नैनो मेडिसीन

दिनांक 23 मई, 2014 को उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद के सभागार में नैनो मेडिसिन : कैंसर एंड बियोंड एक्सिस्ट स्ट्रेटेजीज फ्राम ड्रग डिलीवरी प्लेटफार्म विषय पर व्याख्यान दिया। सेंटर फार कैंसर रिसर्च, मैरीलैंड अमेरिका की डॉ0 अनुपुरी ने बताया कि कैंसर का नैनो ड्रग डिलीवरी सिस्टम क्रांति करने वाला है। उन्होंने बताया कि वर्तमान दवाएं कैंसर रोग विषाणु रोकने का काम तो कर रही हैं, लेकिन इनकी अपनी सीमाएं है साथ ही दवाओं के अत्यधिक मूल्य के कारण वह आम आदमी की पहुंच से बाहर हो रही है। ऐसे में नैनो ड्रग बेहद काम का कांसेप्ट हैं इसके समुचित विकास से उपचार में अभुतपूर्व क्रांति आएगी। विभिन्न प्रकार के कैंसर रोगों के उपचार में बड़ी सहायता मिलेगीं उन्होंने कैंसर प्रतिरोधी दवाओं के बारे में विस्तार से जानकारी दी। बताया कि यूएस ज्वाइंट वार्किंग ग्रुप से ताल–मेल बनाकर उत्तराखण्ड में कार्य किया जाएगा। कैंसर से संबंधित परीक्षणों, थेरेपी समेत विश्व स्तर के स्वास्थ्य शिक्षण कार्यक्रमों को प्रारंभ किया जाएगा।

डॉ डी. पी. उनियाल, वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (यूकॉस्ट) के वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी डॉ0 डी0 पी0 उनियाल ने University of Applied Sciences, Dresden, Germany द्वारा आयोजित कार्यशाला "Sciences based master planning for Bank filtration water supply" में दिनांक 08–10 अप्रैल, 2014 तक प्रतिभाग किया। कार्यशाला का मुख्य उद्देश्य भारत में हो रहें River Bank Filteration व जल गुणवत्ता पर शोध कार्य के विषय में विचार–विमर्श, नवीनतम तकनीक के विषय में जानकारियों का आदान प्रदान करना था। उत्तराखण्ड राज्य में University of Applied Sciences, Dresden, Germany के तकनीकी सहयोग से यूकॉस्ट,

देहरादून व उत्तराखण्ड जल संस्थान, देहरादून ने River Bank Filteration तकनीक के प्रयोग से राज्य के 5 स्थानों श्रीनगर, कर्णप्रयाग, अगस्तमुनि, सतपुली, गौचर में उपरोक्त तकनीक से शुद्ध पेयजल मुहैया करवाया। जल के नमुनों के विशलेषण से पता चला की जल गुणवत्ता अच्छी है।

डॉ0 उनियाल ने उपरोक्त परियोजना में "Nation–wide awareness-creation strategy on Bank Filtration in India" विषय पर अपने व्याख्यान दिया व उनके द्वारा अवगत कराया गया कि आर0बी0एफ0 तकनीक को किस प्रकार से सम्पूर्ण भारत वर्ष में पहुँचाया जा सकता है जिससे अधिक से अधिक जनसंख्या को शुद्ध पेयजल मुहैया कराया जा सके। उन्होंने कहा कि इस तकनीक को अन्य राज्यों में जैसे जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरपूर्वी व दक्षिण भारत के राज्यों को प्रथम चरण में किया जा सकता है व द्वितीय चरण में शेष राज्य में इस तकनीक को उनके राज्य सरकार के सहयोग से किया जा सकता है। इस हेतु उपरोक्त तकनीक को समझने हेतु प्रत्येक राज्य में प्रारम्भिक कार्यशाला का आयोजन करना लाभदायक होगा क्योंकि इसकी वैज्ञानिक व तकनीकी को समझने के पश्चात नीति निर्माताओं को आसानी से तकनीक के विषय में समझ आ सकें व इसको अपने राज्यों में धरातल पर उतार जा सके। भविष्य में उत्तराखड राज्य में

फेस–3 के तौर पर योजना UCOST, उत्तराखण्ड जल संस्थान, राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान व भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रूड़की के सहयोग से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग को वित्तीय सहायता दी जायेगी जिससे राज्य के अन्य स्थानों पर उपरोक्त तकनीक को पहुंचाया जा सकें। डॉ0 उनियाल ने अपने व्याख्यान में बताया कि राज्य में आर0बी0एफ0 तकनीक की जागरूकता करने हेतु 02 अर्न्तराष्ट्रीय कांफेंस, 6 ब्रेन स्ट्रोमिंग व 5 कार्यशाला का आयोजन राज्य के विभिन्न जिलों में किया गया जिससे अब इस तकनीक के विशय में नीति निर्माता व जन मानस का पूर्ण सहयोग कर रहे है व परिषद द्वारा दो पुस्तकें व ठतवनबीमत भी लिख गये जो कि जागरूकता हेतु लाभदायक सिद्ध हुआ है।

कार्यशाला के अन्तिम दिन ड्रेसडेन में आर0बी0एफ0 साइट का भम्रण कराया गया व साथ ही वैज्ञानिकों से Flood Protection में आर0बी0एफ0 साइट का मैंनेजमैंट करने हेतु टेक्नोलॉजी को दिखाया व विस्तार से इस सम्बंध में विचार–विमर्श किया गया साथ ही उनके द्वारा प्रयोग में लाए जा रहें उपकरण आदि के विषय में भी जानकारी दी। भविष्य में राज्य में आर0बी0एफ0 को जर्मन में Flood Protection tech का उपयोग में लाया जाएगा जिससे किसी भी Natural Climates में आर0बी0एफ0 साइट सुचारू रूप से कार्य कर सके।

डॉ0 उनियाल ने परिषद को शोध एवं विकास, विज्ञान लोक व्यापीकरण, उद्यमिता विकास आदि कार्य का प्रस्तुतीकरण किया A University of Applied Sciences, Dresden, Germany University of Technical Science, Russia, Thailand, Canada आदि देशों जर्मनी के वैज्ञानिकों के साथ विचार–विमर्श किया व भविष्य में साथ मिलकर उपरोक्त विषय पर संयुक्त रूप से सहभागिता करने पर सहमति बनाई। जिससे नई तकनीकों का हस्तांतरण हो सकेगा व उपरोक्त कार्यशाला को सफलतम एवं राज्य की प्रगति के लिए उपयोगी व ज्ञानवर्धक बताया।

नासी की दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन

प्रथम- वैज्ञानिक शोध पत्र व परियोजना लेखन

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (यूकॉस्ट) एवं राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी भारत (नासी) के संयुक्त तत्वाधान में दिनांक 18 जून, 2014 को ग्राफिक एरा विश्वविद्यालय, देहरादून में दो दिवसीय कार्यशाला का शुभारम्भ किया गया जिसका प्रथम दिवस का मुख्य विशय था ''वैज्ञानिक पेपर लेखन''। आयोजन में उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यूसर्क) तथा राज्य जैव प्रौद्योगिकी कार्यक्रम द्वारा सक्रिय सहयोग प्रदान किया गया।

उद्घाटन समारोह में अपने सम्बोधन में मुख्य अतिथि यूकॉस्ट के महानिदेशक, श्री विजय कुमार ढौंडियाल ने युवा वैज्ञानिकों से कहा कि प्रदेश की विज्ञान नीति में युवाओं को शोध करने एवं शोध लेखन पर बढ़ावा देने हेतु विशेष जोर दिया जायेगा। साथ ही उन्होंने प्रदेश के विकास के लिए विज्ञान का रोड मैप भी शीघ्र ही तैयार किये जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

कार्यशाला के सम्मानित अतिथि एन0आर0डी0सी0, नई दिल्ली के अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक, डा0 राजेन्द्र डोभाल ने युवाओं को वरिष्ठ वैज्ञानिकों के अनुभवों के लाभ स्तरीय शोध ग्रन्थों एवं जनरलों में अपने शोध पत्र छापने में करने को कहा की अपील की है तथा विशेष रूप से अंग्रेजी में शोध पत्र लेखन में वैज्ञानिकता लाने पर जोर दिया।

कार्यशाला का थीम व्याख्यान पद्मभूषण प्रो0 वी0पी0 शर्मा, पूर्व अतिरिक्त महानिदेशक, भारतीय चिकित्सा शोध परिषद, नई दिल्ली ने दिया। उन्होंने वैज्ञानिक शोध पत्र लेखन कला की बारीकियों से प्रतिभागियों को विस्तार से जानकारी दी तथा इससे सम्बन्धित सभी विषयों पर अनेक जिज्ञासाओं का समाधान भी किया।

उद्घाटन समारोह में उपस्थित प्रतिभागियों को पद्मश्री प्रो0 ए0एन0 पुरोहित–पूर्व कुलपति, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, प्रो0 वी0सी0 श्रीवास्तव, राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, भारत, इलाहाबाद तथा प्रो0 आर0सी0 जोशी–कुलपति, ग्राफिक एरा विश्वविद्यालय, देहरादून ने भी सम्बोधित किया।

पूर्वान्ह प्रथम तकनीकी सत्र में सत्र की अध्यक्षता प्रो0 वी0पी0 शर्मा, पूर्व अतिरिक्त महानिदेशक, भारतीय चिकित्सा शोध परिषद, नई दिल्ली ने की तथा विशेषज्ञों के रूप में नासी से आये प्रो0 परमजीत खुराना– विदेश सचिव, राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, भारत, इलाहाबाद तथा प्रो0 यू0सी0 श्रीवास्तव, विशेश सचिव, नासी ने युवा शोधार्थियों, वैज्ञानिकों व शिक्षकों को वैज्ञानिक पत्र लेखन विषय पर सम्बोधित किया।

कार्यशाला के अपरान्ह में द्वितीय तकनीकी सत्र की अध्यक्षता प्रो0 यू0सी0 श्रीवास्तव, विशेष सचिव, नासी ने की तथा विशेषज्ञ व्याख्यान डा0 डी0पी0 उनियाल, वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी, यूकॉस्ट द्वारा दिया गया, जिसमें उन्होनें प्रतिभागियों को परियोजन लेखन, अनुदान प्राप्ति तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकार व प्रबन्धन पर सम्बोधित किया। उन्होंने बताया कि यूकॉस्ट द्वारा इस क्षेत्र में प्रदेश के सभी 13 जिलों में भी व्यापक गतिविधियां चलायी जा रही हैं, जिसका लाभ प्रदेश के शोध कर्मी यूकॉस्ट के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।

कार्यशाला के अन्तिम विचार–विमर्श सत्र की अध्यक्षता प्रो0 वी0पी0 शर्मा, नई दिल्ली ने की। इस सत्र में बौद्धिक चर्चा में विशेषज्ञों के रूप में प्रो0 परमजीत खुराना, प्रो0 यू0सी0 श्रीवास्तव, डा0 नीरज कुमार, नासी, इलाहाबाद एवं प्रो0 अनिल कुमार गुप्ता, निदेशक, वाडिया हिमालियन भू–विज्ञान संस्थान, देहरादून ने सक्रिय भूमिका निभायी तथा युवा वैज्ञानिकों को शोध को बेहतर रूप से व्यवस्थित कर उचित वैज्ञानिक लेखन द्वारा स्तरीय शोध ग्रन्थों में प्रकाशित कराने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

कार्यक्रम के उद्घाटन समारोह का संचालन श्रीमती मोना बाली तथा स्वागत भाशण यूकॉस्ट के वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी डा0 डी0पी0 उनियाल द्वारा दिया गया। इस अवसर पर धन्यवाद ज्ञापन नासी से सचिव, डा0 नीरज कुमार द्वारा दिये गया।

द्वितीय - विज्ञान एवं तकनीक में महिला सशक्तिकरण

दिनांक 19, जून, 2014 द्वितीय दिवसीय कार्यशाला के मुख्य अतिथि प्रो0 एस0पी0 सिंह, पूर्व कुलपति, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर द्वारा महिलाओं की शोध एवं विकास में सक्रिय भागीदारी को देश एवं राज्य हित में अत्यन्त आवश्यक बताया और प्रदेश में इस प्रयोजन हेतु एक वातावरण तैयार करने की जरूरत पर बल दिया।

कार्यशाला के सम्मानित अतिथि डॉ0 बी0आर0 अरोड़ा, भूतपूर्व निदेशक, वाडिया भू–विज्ञान संस्थान, देहरादून द्वारा बताया गया कि समाज को महिलाओं के लिए विज्ञान एवं तकनीक में भविष्य निर्धारण हेतु उपयुक्त वातावरण तैयार करना चाहिए।

कार्यशाला के प्रो0 संजय जसोला, कुलपति, ग्राफिक एरा विश्वविद्यालय, देहरादून द्वारा कहा गया कि विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में आये विकास के बाद इसमें महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए नासी एवं यूकॉस्ट का संयुक्त प्रयास सराहनीय है।

यूकॉस्ट के महानिदेशक, श्री विजय कुमार ढ़ौडियाल ने बताया कि परिषद समय–समय पर महिलाओं हेतु विज्ञान

आधारित विभिन्न विषयों पर कार्यक्रमों का आयोजन करती रही है जिनका विस्तार किये जाने की आवश्यकता है।

कार्यशाला का थीम व्याख्यान पद्मविभूषण प्रो0 मंजू शर्मा, पूर्व सचिव, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली ने कहा कि महिलायें भारत के विकास का अभिन्न अंग हैं तथा उनके विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में सुदृढ़ भविष्य के लिए छात्रवृत्ति, सूचना केन्द्रों की स्थापना, संसाधनों का सुदृढ़िकरण एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाकर उपयुक्त माहौल तैयार पर बल दिया।

इस अवसर पर उपस्थित डॉ0 राजेन्द्र डोभाल, अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक, एन0आर0डी0सी0, नई दिल्ली ने बताया कि राज्य में महिलाओं के उत्थान हेतु देहरादून में वर्ष 1902 में ही एम0के0पी0 कालेज की स्थापना की गयी थी जो भी महिलाओं की उच्च शिक्षा में अग्रणी है। हमें चाहिये कि इस परिपाठी को आगे बढ़ाकर महिलाओं की विज्ञान एवं तकनीक क्षेत्र में भागीदारी को सुनिश्चित करें।

पूर्वान्ह प्रथम तकनीकी सत्र में सत्र की अध्यक्षता प्रो0 यू0सी0 श्रीवास्तव, महासचिव, नासी, इलाहाबाद ने की तथा

विशेषज्ञों के रूप में डॉ0 शुबरा चक्रवर्ती, एन0आई0पी0जी0आर0, नई दिल्ली एवं डॉ0 ज्योति शर्मा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली ने युवा शोधार्थियों, वैज्ञानिकों व शिक्षकों को सम्बोधित किया तथा भारत सरकार द्वारा विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में महिलाओं हेतु चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों पर विस्तार से चर्चा की।

कार्यशाला के अपरान्ह में द्वितीय तकनीकी सत्र की अध्यक्षता प्रो0 मंजू शर्मा, पूर्व सचिव, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली ने की तथा विशेषज्ञ व्याख्यान प्रो0 स्नेह भार्गव, नासी, इलाहाबाद एवं डॉ0 अनिल पी0 जोशी, स्थापक, हैस्को, देहरादून द्वारा अपने विचार व्यक्त किये गये।

कार्यशाला के अन्तिम विचार–विमर्श सत्र की अध्यक्षता प्रो0 मंजू शर्मा, पूर्व सचिव, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली ने की। इस सत्र में बौद्धिक चर्चा में विशेषज्ञों के रूप में प्रो0 स्नेह भार्गव, उपाध्यक्ष, नासी, श्री विजय कुमार ढौंडियाल, महानिदेशक, यूकॉस्ट, देहरादून, डॉ0 अनिल जोशी, डॉ0 किरन नेगी, हैस्को, देहरादून, डॉ0 ज्योंति शर्मा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, डॉ0 सुभरा चक्रवर्ती, एन0आई0पी0जी0आर0, नई दिल्ली ने सक्रिय भूमिका निभायी तथा युवा वैज्ञानिकों को महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

इस अवसर पर नासी द्वारा स्पेक्स संस्था को विज्ञान की गतिविधियों के प्रचार–प्रसार हेतु पुरस्कृत भी किया गया।

Governance in S&T प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रतिभाग

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग नई दिल्ली के द्वारा Governance in S&T विषय पर पांच दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम वैज्ञानिकों हेतु दिनांक 16–20 जून, 2014 तक सी0डी0एम0, एन0आई0ए0आर0 के एल0बी0एस0एन0ए0ए0 मसूरी में सम्पन्न किया गया। प्रशिक्षण के दौरान अलग–अलग राज्यों में 20 वैज्ञानिकों ने प्रतिभाग किया। प्रशिक्षण कार्यक्रम के अर्न्तगत Governance पहलुओं पर जैसे RTI, Conduct Rules, Institutional Governance etc. विषय पर चर्चा एवं व्याख्यान दिए गये। उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद से डॉ0 कीर्ति जोशी, वैज्ञानिक अधिकारी द्वारा प्रतिभाग किया गया।

समस्त राज्य में विश्व बौद्धिक सम्पदा अधिकार दिवस का आयोजन

समस्त राज्य में दिनांक 26 अप्रैल, 2014 को विश्व बौद्धिक सम्पदा अधिकार दिवस का आयोजन मुख्यताः ग्राफिक एरा, देहरादून, जी0बी0 पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, यूनिवर्सिटी ऑफ पेट्रोलियम एण्ड एनर्जी स्टडिज, चम्पावत, दून विश्वविद्यालय, द्वारहाट, इंजीनियरिंग कॉलेज में किया गया। इस उपलक्ष में विभिन्न विद्यालयों के छात्र–छात्राओं ने प्रतिभाग किया जिसमें Poster Presentation, Drawing, Eassy, Popular Lecture आदि का आयोजन किया गया।

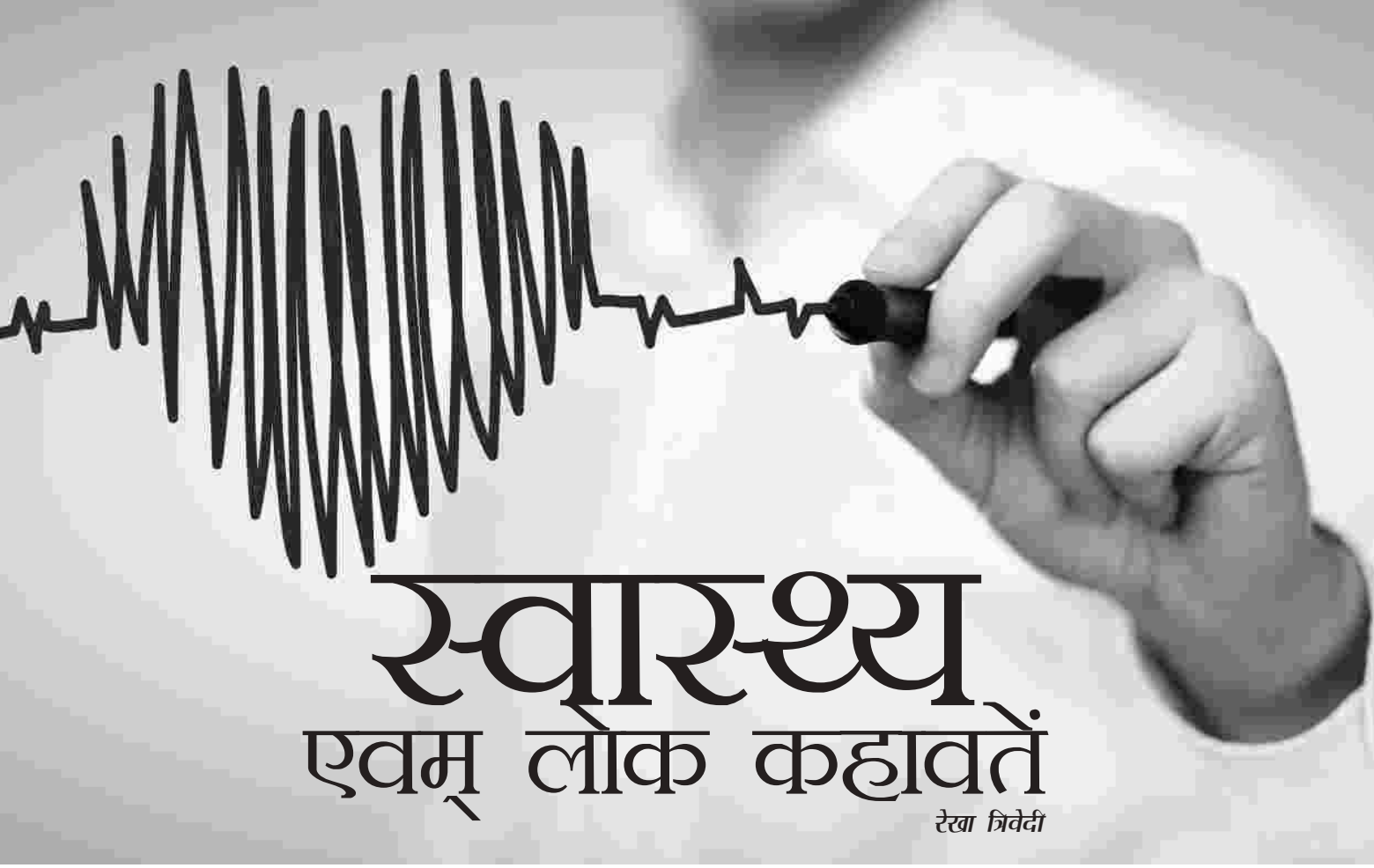

स्वास्थ्य एवम् लोक कहावतें

रेखा त्रिवेदी

हम सभी जानते हैं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का आवास होता है। शरीर सदैव निरोग रहे क्या यह साधारण सुख है? स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन एवं स्वस्थ बुद्धि हेतु हम अपने पूर्वजों के अनुभव एवम् अनुसंधान का लाभ उठा सकते हैं। हमारे ग्रामीण अंचल में तो इन अनुभवों को सूत्रवत सुरक्षित कर दिया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में हवा, जंगल और पहाड़ों पर उगने वाली जड़ी–बूटियों को बड़ी समझदारी से पहचाना गया था। उन पर प्रयोग किया गया था तथा उनसे होने वाले लाभ हानि को भी बड़ी गहराई से जाँचा और परखा गया था तब जाकर अपने अनुभवों को सूक्तिबद्ध किया और कहावतों का निर्माण किया गया था।

जैसे कहावत-

प्रातः काल खटिया से उठि के पिये तुरन्त पानी
ताके घर में वैद्य न आवे बात 'घाघ' की जानी।

इसका तात्पर्य है जो व्यक्ति सवेरे उठ कर पानी पीता है उसको वैद्य या चिकित्सक बुलाने की आवश्यकता नहीं है। यह बात 'घाघ' की जानी हुई है।

जल्दी सोवे जल्दी जागे।
ताको रोग दिन में भागे।।

अर्थात् जल्दी सोने वाला तथा जल्दी उठने वाला व्यक्ति हमेशा निरोगी रहता है।

इसी सन्दर्भ में ऐसा भी कहा गया है–

'सबेरे जल्दी उठेगा जो
रहेगा हर वक्त वो हंसी खुशी
न आयेगी सुस्ती कभी नाम को
खुशी से करेगा हर काम को
सुबह का वक्त और ये ठण्डी हवा
यह है सौ दवाओं से बेहतर दवा।।'

ज्यादा खाए, जल्दी मरि जाय।
सुखी वही जो थोड़ा खाय।।

अधिक भोजन करने वाला अल्पजीवी होता है। कम खाने वाला सुखी रहता है।

घाघ रोके चारि जो, जिये थोर दिन पूत
भूख, प्यास के साथ में, मल शंका और मूत।।

'घाघ' कवि कहता है कि वह पुत्र या व्यक्ति बहुत कम दिन जीवित रहता है जो भूख, प्यास, मल और मूत्र इन चारों को रोकता है।

खाइके मूतै सूतै बाँव।
काहे वैद्य बसावै गाँव।।

भोजन करने के बाद मूत्र त्याग करे और तब बांयी करवट लेटे। ऐसा करने वाले व्यक्ति को वैद्य या डाक्टर की आवश्यकता नहीं होती।

बारह महीनों के खान पान तथा दिनचर्या की सूची यह कहावत बतलाती है।

सावन हर्रे भादो चीत, क्वार मास गुड़ खाओ मीत।
कार्तिक मूली, अगहन तेल, पूस में करे दूध से मेल।।
माघ मास घिउ खिचड़ी खाय, फागुन उठि के प्रातः नहाय।
चैत मास में नीम बसहती, बैसाख मास में खाय जड़हती।
जेठ मास जो दिन में सोवै, ताकर दुःख असाढ़ में रोवे।

अर्थात् जो व्यक्ति सावन में हर्रे, भादों में चिरायता, क्वार में गुड़, कार्तिक में मूली, अगहन में तेल, पूस में दूध, माघ में घी और खिचड़ी खायेगा, फागुन में प्रातः

काल स्नान करेगा, चैत में नीम की फनगी और बैसाख में भात खायेगा, जेठ मास में दिन में सोयेगा उसका रोग आषाढ़ में रोवेगा अर्थात् वह पूरे वर्ष निरोग रहेगा।

जाको मारा चाहिए, बिन मारे बिन घाव।
ताको यही बताइये, घुइयाँ पूरी खाव।।

तात्पर्य है – जिसको बिना मारे या बिना चोट पहुँचाए मारना हो तो उसे घुइयाँ (अरबी) और पूरी खाने को कहें। इससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

स्वच्छ जल के सन्दर्भ में हमारे ग्रामीण पूर्वजों का कहना है –

गहिर कूप, पर्वत के ऊपर और आकाशी पानी।
वैद्य बूढ़ सब इन्हैं बखानै, सब बातें जिन जानीं।।

अर्थात् या तो गहरे कुंए का पानी हो, या पर्वत के ऊपर का या बादलों से गिरने वाला पानी हो। वैद्य और बुजुर्ग सभी ऐसे पानी को स्वच्छ जल मानते हैं।

रहे निरोगी जो कम खाय।
बगैर काम न जो गम खाय।।

कम खाने वाला रोग रहित रहता है और गम खाने वाले का काम नहीं बिगड़ता है। इसी सन्दर्भ में बुजुर्गों ने कहा है।

सुघल, सुजन, शुचि पाक हो, समय सहित मिलि जाय।
एहि विधि जो भोजन मिलै, एक ग्रास कम खाय।।

स्वच्छ स्थान पर, अच्छे व्यक्ति द्वारा शुद्ध भोजन यदि समय से मिल जाय तो उसे भी एक ग्रास कम ही खाना चाहिए।

लच्छन निर्मल वायु के, घाघ मते यह आय।
बगिया या जल राशि की दिशा वहै जो पाय।।

उत्तम स्वास्थ्य हेतु किस वायु को स्वच्छ माना जाय इसके सम्बन्ध में घाघ का मत है कि निर्मल वायु का लक्षण यह है कि या तो किसी जलाशय के ऊपर से होकर आ रही हो या बाग की ओर से।

ध्यान रहे जो तीनि का, तो फिर बड़े हयात।
स्वच्छ जल, स्वच्छ हवा, ओ भोजन स्वच्छ सुहात।।

अर्थात् इन तीन बातों का ध्यान रहे तो स्वर्गिक आनन्द प्राप्त हो सकता है। ये तीन बातें हैं – स्वच्छ जल, स्वच्छ हवा और स्वच्छ भोजन।

अंतरे खोतरे कसरत करै।
ताल नहाय ओस में परै।।
लागी रही सौच ना करै।
देव न मारे अपने मरै।।

अर्थात् अनियमित ढंग से व्यायाम करने वाला, ताल में स्नान करके ओस में सोने वाला और शौच रोकने वाले को परमात्मा नहीं मारता है, वह तो अपने आप मर जायेगा।

श्रम कर निशि दिन खाय जो
दम भर कारज कीन्ह।
इन्द्री जेहि के बस रही
जगत नीति बस कीन्ह।

अर्थात् परिश्रम के अनुपात में भोजन करने वाला, शक्ति के अनुरूप कार्य करने वाला और इन्द्रियों को वश में करने वाला सारे संसार पर विजय प्राप्त कर सकता है।

इस तरह हमारे ग्रामीण अंचलों में स्वास्थ्य सम्बन्धी कहावतों का भण्डार है। यह बात शत प्रतिशत सही है कि ये कहावतें सहस्त्रों वर्षों के अनुभवों पर आधारित हैं और वैज्ञानिक दृष्टि से निश्चित रूप से उपयोगी हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि वर्तमान परिवेश मे जनता अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं है। जो है वे सभी साधुवाद के पात्र हैं। फिर भी उक्त लोक कहावतों के आधार पर प्रबुद्ध पाठकों से यही कहना है कि वर्तमान परिवेश में आवश्यकता है कि विस्मृति के गर्त में जाने वाले इन सूत्र वचनों का संग्रह किया जाय और उनसे लाभ उठाया जाय। रोग के लिए धन व्यर्थ करने की आवश्यकता नहीं है बशर्ते एक बार मुड़कर पीछे की ओर देखा जाय कि हम क्या छोड़कर किधर भागे जा रहे हैं।

अन्त में लोक कहावतों हेतु ग्रामीण स्वास्थ्य समन्वित ग्रामीण विकास केन्द्र बी. एच.यू. का आभार!

सेवा निवृत्त प्रधानाचार्य
मोहनलाल शाह इंटर कॉलेज,
नैनीताल

एक बहुगुणी पादप
रोजमेरी

ललित कोठियाल

वैसे तो उत्तराखण्ड की धरती अनेक प्रकार के सगन्ध पादपों की कृषि के लिये माकूल है किन्तु इनमें रोजमेरी की सफलता के बारे में कोई सन्देह नहीं है। दूसरे पौधों की भांति यह वर्षा, गर्मी व कठोर शीत को झेल जाने की पूरी क्षमता रखता है। यह कैसी भी भूमि पर उगाया जा सकता है और ७ साल से भी अधिक समय तक सदाबहार बना रहता है। यह एक सर्वगुणसम्पन्न पादप है जो सगन्ध पादप होने के साथ-साथ एक मसाला एवं औषधीय पादप भी है। इसकी पहली पहचान सगन्ध पौधे के रूप में ही होती है। इसकी झाडियों से निष्कर्षित सगन्ध तेल का उपयोग आज अनेकानेक प्रकार की प्रसाधन सामग्री के निर्माण में हो रहा है। रोजमेरी की ताजा पत्तियाँ इटेलियन व स्पेनिश भोजन को सुस्वादु बनाने के लिये उपयोग में लाई जाती हैं जबकि इसकी सूखी पत्तियों का उपयोग फास्ट फूड में किया जाता है। इनसे भी हटकर रोजमेरी की एक औषधीय पौधे के रूप में भी पहचान है जिससे निकले घटकों का उपयोग आज कई प्रकार की औषधियों में हो रहा है। इनके अतिरिक्त रोजमेरी के साल भर हरा-भरा दिखने से इसका उपयोग सजावट या शोभनीकरण में होता है।

रोजमेरी पादप

रोजमेरी का वानस्पतिक नाम *रोजमेरीनस ऑफीसिनेलिस* है जो लैमेसी कुल के अन्तर्गत आता है। समुद्री तटवर्ती क्षेत्रों में बहुतायत से उगने के कारण इसका नाम रोजमेरी पड़ा। लैटिन भाषा में इसका अर्थ होता है समुद्र की ओस। यह एक बहुशाखीय व 7–8 साल की बहुवर्षीय आयु वाला सदा हरित रहने वाला पौधा है। विश्वभर में रोजमेरी की लगभग दो दर्जन उपजातियां मिलती हैं। इसमें हल्के नीले व सफेद रंग के फूल निकलते हैं।

इस पादप का मूल स्थान भूमध्यसागरीय देशों के समुद्री तटवर्ती पहाडियों में माना जाता है। पहले इसे एक अनुपयोगी झाड़ी समझा जाता था लेकिन जैसे–जैसे इसके उपयोगों का पता चलता गया, यह व्यावयासिक रूप से उगाया जाने लगा। वर्तमान में इटली, फ्रांस, सर्बिया, जर्मनी, पुर्तगाल, मोरक्को, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों में रोजमेरी की खेती होती है। चूंकि रोजमेरी विदेशी धरती का पौधा है इसलिये इसके उत्पादों का बाजार अभी विदेशों तक ही सीमित है।

रोजमेरी एक सगन्ध पादप

रोजमेरी सगन्ध तेल का एक अच्छा स्रोत है जो इसकी पत्तियों के भाप आसवन से प्राप्त होता है। पुष्पित होने पर फूलों सहित इसकी टहनियों को तोड़कर काट लिया जाता है। जहां से इनको भाप आसवनी या निष्कर्षण संयन्त्र तक पहुंचाया जाता है ताकि उड़नशील तेल की अधिकाधिक मात्रा प्राप्त हो सके। यह तेल दिखने में हल्का रंगहीन हल्का पीलापन लिये होता है जिसमें एक तारपीन की तरह की खास खुशबू होती है। इत्र बाजार में इसके ट्यूनीशिया, मोरक्को व स्पेन के तीन प्रभेद दुनिया में मुख्य रूप से मिलते हैं। रासायनिक तौर पर इसके तेल में विविध घटक पाये जाते हैं जिनमें बर्निओल, साइनिओल, टर्पिओल आदि प्रमुख हैं जिनकी अलग अलग खुशबू होती है। इसकी प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष उपज 250 कुंतल तक प्राप्त की जा सकती है जिससे 35–50 किग्रा तक सुगन्धित तेल निकलता है। जिसको बेचकर 2.0–2.50 लाख रुपये तक की आय कमाई जा सकती है। इसके विभिन्न प्रभेदों से निकलने वाले तेल की मात्रा 0.27 से 0.51 प्रतिशत तक होती है। यह कम या ज्यादा भी हो सकती है जो जलवायु, भूमि व रोजमेरी के प्रभेद पर निर्भर करती है। सफेद पुष्प वाली इटेलियन रोजमेरी नीले पुष्प वाली रोजमेरी के सापेक्ष अधिक तेल देती है। वहीं नीले फूल वाली रोजमेरी से अधिक मात्रा में पत्तियां निकलती हैं। इसे बेच लगभग उतनी ही आय होती है जितनी कि तेल से।

इसके तेल से प्राप्त विभिन्न घटकों का प्रयोग कई प्रकार की प्रसाधन सामग्री में किया जा रहा है। इनमें बालों के डेनड्रफ शैम्पू, टॉनिक व तेल, मसाज क्रीम, माउथवाश मुख्य हैं। रोजमेरी जेल से निकले घटकों का इस्तेमाल भाप स्नान, कमरों को महकाने में भी होता आया है। इसका प्रयोग स्नान के साबुन बनाने भी हो रहा है। भारत में वर्तमान में रोजमेरी के तेल की ज्यादातर मांग स्पेन, फ्रांस, ट्यूनिशिया व मोरक्को आदि देशों से आपूर्त होती है। भारत में भी कुछ कम्पनियां अपने प्रयोग के लिये इसके उत्पाद बना रही हैं। रोजमेरी को बालों के लिये बहुत लाभदायक माना जाता है इसलिये इसके ज्यादातर उत्पाद बालों को लेकर बनते हैं।

रोजमेरी एक मसाला पादप

रोजमेरी का प्रयोग आज एक मसाला पादप के रूप में किया जाता है। इटली, स्पेन आदि कई यूरोपीय देशों में इसका प्रयोग मांसाहारी भोजन को सुस्वादु बनाने में किया जाता है। इसकी हरी पत्तियों का उपयोग ठीक उसी तरह से होता है जिस तरह से भारतीय भोजन में करी पत्ते का। इसकी सूखी पत्तियों का उपयोग पीजा, नूडल्स आदि फास्ट फूड के मसाले में होता है। प्राकृतिक रूप से प्राप्त ताजी या सूखी पत्तियां मटर, हरी बीन्स, ब्रोकली, गोभी, आलू, बैंगन, लौकी, शलजम, मूली, फलों के सलाद, जैम, सूप, बिस्कुट, पेय पदार्थों, मांस, मछली इत्यादि को सरस व महकदार बनाने में काम आती है। रोजमेरी की पत्तियों से प्राप्त जूस के जीवाणुरोधक एवं प्रति आक्सीकारक होने के कारण इसका प्रयोग मांस आदि भोज्य पदार्थों को डिब्बा बन्द करने में होता है। इससे उसे लम्बे समय तक सुरक्षित रखने में मदद मिलती है। लेकिन अभी तक इसका प्रयोग भारतीय रसोई में आरम्भ नहीं हुआ है। आइसक्रीम, पुडिंग, समर जूस, लेमोनेड, सिरप, सिरके, शराब को महकाने, मांस व सब्जियों को मैरीनेट करने, चटनी, मुरब्बे, सीजनिंग करने से लेकर न जाने कितने प्रयोग इसे लेकर हो रहे हैं।

इनकी पत्तियों को काटने व धोने के बाद छायादार स्थान में अंधेरे में एक खास विधि के तहत सुखाया जाता है जिससे इसकी हरी पत्तियों में मौजूद सुगन्ध बनी रहती है। इस विधि में कई दिन लगते है। सूखने के बाद उनको पॉलीपैक में बन्द कर बाजार में बेचा जाता है।

औषधीय पादप के रूप में रोजमेरी

सगन्ध व मसाला पौध से अलग इसकी एक औषधि पादप की भी पहचान है। इसकी पत्तियों में एन्टी ऑक्सीडेन्ट, एन्टीफंगल, एन्टी बैक्टीरियल, एन्टी इनफ्लेमेटरी गुण मौजूद होते हैं। जिस

कारण इसका कई प्रकार से उपयोग होता है। इसकी पत्तियों से बनी चाय को तन्त्रिका सम्बन्धी विकार, सिरदर्द व तन्त्रिका तंत्र को स्फूर्ति व शक्ति देने में इस्तेमाल किया जाता है। इसका तेल सिरदर्द, शिथिलता, ऋतुस्राव सम्बन्धी विकारों में प्रयोग होता है। इसकी पत्तियां पेटदर्द के लिए अचूक औषधि मानी जाती हैं। पौधे का सत्व बोरेक्स के साथ मिलाकर गंजेपन को रोकता है। इसके फूलों के गुच्छे और पत्तियां गठिया, पक्षाघात में उपयोगी साबित हुई हैं। सूखी हुई रोजमेरी की पत्तियों का धुआं दमा के रोगियों के लिये फायदेमंद है। इसकी पत्तियों का काढ़ा कई दूसरे काम आता है। रोजमेरी का ऐरोमा थिरेपी में प्रचलन बढ रहा है।

हाल ही में रोजमेरी में मौजूद एक रसायन के बारे में एक नया शोध सामने आया है। ब्रिटेन की प्रमुख फार्मेकोलॉजिकल पत्रिका 'सेज' में प्रकाशित शोध पत्र के अनुसार इसके तेल में मौजूद सीनिओल नामक घटक मस्तिष्क क्षमता व मूड पर सकारात्मक असर करता है। इसकी गन्ध जब मनुष्य की नासिका से होकर फेफड़ों में पहुचती है तो वहां मौजूद रक्त कोशिकाएँ उसे अवशोषित कर लेती हैं जहां से वह मस्तिष्क में पहुंचकर कोशिकाओं की मांसपेशियों की सक्रियता को बढाती है। यह मस्तिष्क की प्रमुख बीमारियों एल्जाइमर व डिमेंशिया में भी लाभकारी है। इस पर आगे कार्य जारी है।

कृषि हेतु जलवायु

रोजमेरी की कृषि के लिये शीतोष्ण, सम शीतोष्ण जलवायु अति उत्तम मानी गयी है। भारत में अभी रोजमेरी बहुत ही सीमित क्षेत्रफल में उगाई जा रही है जिसमें दक्षिण में नीलगिरी की पहाड़ियों व केरल के कुछ इलाके शामिल हैं किन्तु उत्तराखण्ड में समुद्रतल से 1200 मीटर से 2500 मीटर की उँचाई पर मौजूद जलवायु इसके लिये बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुई है। अधिक वर्षा व शीत का इस पर कोई प्रतिकूल असर नहीं होता है।

रोजमेरी की कृषि

रोजमेरी के पौधे कटिंग विधि से तैयार किये जाते हैं। इसके लिये पौधे की नयी टहनियों को काटकर उनको हार्मोन के विलयन में डुबाकर उपचारित मिट्टी या पालीथीन की थैलियों में रोपा जाता है। इसमें नियमित सिंचाई की जाती है जिसके कुछ ही दिन बाद यह कटिंग जड़ पकड़ लेती है। नर्सरी पर इसे तैयार होने में 3 से 4 माह लग जाते हैं। इसके बाद इनको खेतों में रोप दिया जाता है। इसकी पहली फसल को तैयार होने में 12 माह से 14 माह तक लग जाते हैं। इसका पौधा यदि न काटा जाय तो 5 से 6 फीट तक उँचाई प्राप्त करता है जिसकी आयु 7 से 8 साल की होती है। इसके बाद यह सूखने लगता है।

यद्यपि रोजमेरी के लिये सुरक्षित तापमान 8 से 30 डिग्री से.ग्रे. उपयुक्त माना गया है लेकिन बदलते मौसम का इस पौधे पर अभी उतना बुरा प्रभाव नहीं देखा गया है। उत्तराखण्ड में यह पौधा 0 से 35 डिग्री सेन्टग्रेड तापमान पर भी उग रहा है। लेकिन कम व अधिक तापमान का इसकी फसल पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। हालांकि इसे बहुत देखभाल की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन सामान्य निराई गुड़ाई व खाद पानी मिल जाये तो इसका प्रभाव इसकी बढ़वार पर दिखता है। इसकी पत्तियों में तीव्र गन्ध होने के कारण पालतू पशु इससे दूर ही रहते हैं। भारी वर्षा में जहां दूसरे सगन्ध पादप खराब हो जाते हैं वहीं अधिक बारिश का कोई विपरीत प्रभाव नहीं होता है। साल भर में इससे दो फसलें निकाली जा सकती हैं।

उत्तराखण्ड की पहाडियों में रोजमेरी का प्रवेश 19वीं शताब्दी में हुआ जहां यह मुक्तेश्वर व रानीखेत के आसपास उगाया गया। बीसवीं शती के अन्त में इसका प्रसार अब दूसरे क्षेत्रों में हो रहा है। नैनीताल के निगलाट में भवाली स्थित एन.बी.पी.जी.आर. में इसे लेकर कई प्रयोग किये गये। इसके अलावा आज यह बागेश्वर के समीप पुरुडा स्थित सीमैप के क्षेत्रीय केन्द्र में उगाया जा रहा है। पौड़ी के समीप एक स्वयंसेवी संस्था के द्वारा भी इसे सफलता के साथ उगाया गया। इसकी पौध इन संस्थानों से उपलब्ध कराई जाती है।

उत्तराखण्ड के कुमाऊं अंचल में जो काश्तकार रोजमेरी की खेती कर रहे हैं उनकी खपत यहां के औद्योगिक आस्थान सिडकुल में कुछ कम्पनियों में हो रही हैं जहां इसकी सूखी पत्तियां 250 रु. प्रति किग्रा. तक बिक जाती हैं वहीं हरी पत्तियों की कीमत 35 से 40 रु प्रति किलो तक है। 1 हैक्टेयर में इसकी फसल से 2 से 2.5 लाख तक की आय की जा सकती है।

यह पादप पथरीली धरती पर भी सफल हैं जो अधिकतर पहाड़ी क्षेत्रों में होती है। उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्र में जहां परम्परागत फसलें अब कम लाभप्रद हो गई हैं रोजमेरी की खेती एक लाभप्रद सौदा हो सकती है। इसी प्रकार रोजमेरी का भारतीय रसोई में प्रयोग करने की आवश्यकता है। भारत में प्रसाधन निर्माता कम्पनियां रोजमेरी आधारित प्रसाधन सामग्री बनाने में लगी हैं। उत्तराखण्ड में इसकी कृषि की प्रबल संभावनाओं को देखते हुये इसकी कृषि व उत्पाद बनने तक की चरणबद्ध योजना के साथ आगे बढ़ने की जरुरत है ताकि लोग इसको व्यावसायिक तरीके से उगा सकें।

गुरू भवन डिप्टी धारा
पौड़ी गढ़वाल 246001
उत्तराखण्ड

अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइए

लगभग (5000 जाति) जन्तु हैं जिन्हें स्तनधारी वर्ग में रखा गया है। हम अर्थात् 'मानव' भी अति बुद्धिमान श्रेणी के स्तनधारी हैं।

जलीय स्तनधारी

–एस0के0 गुप्त

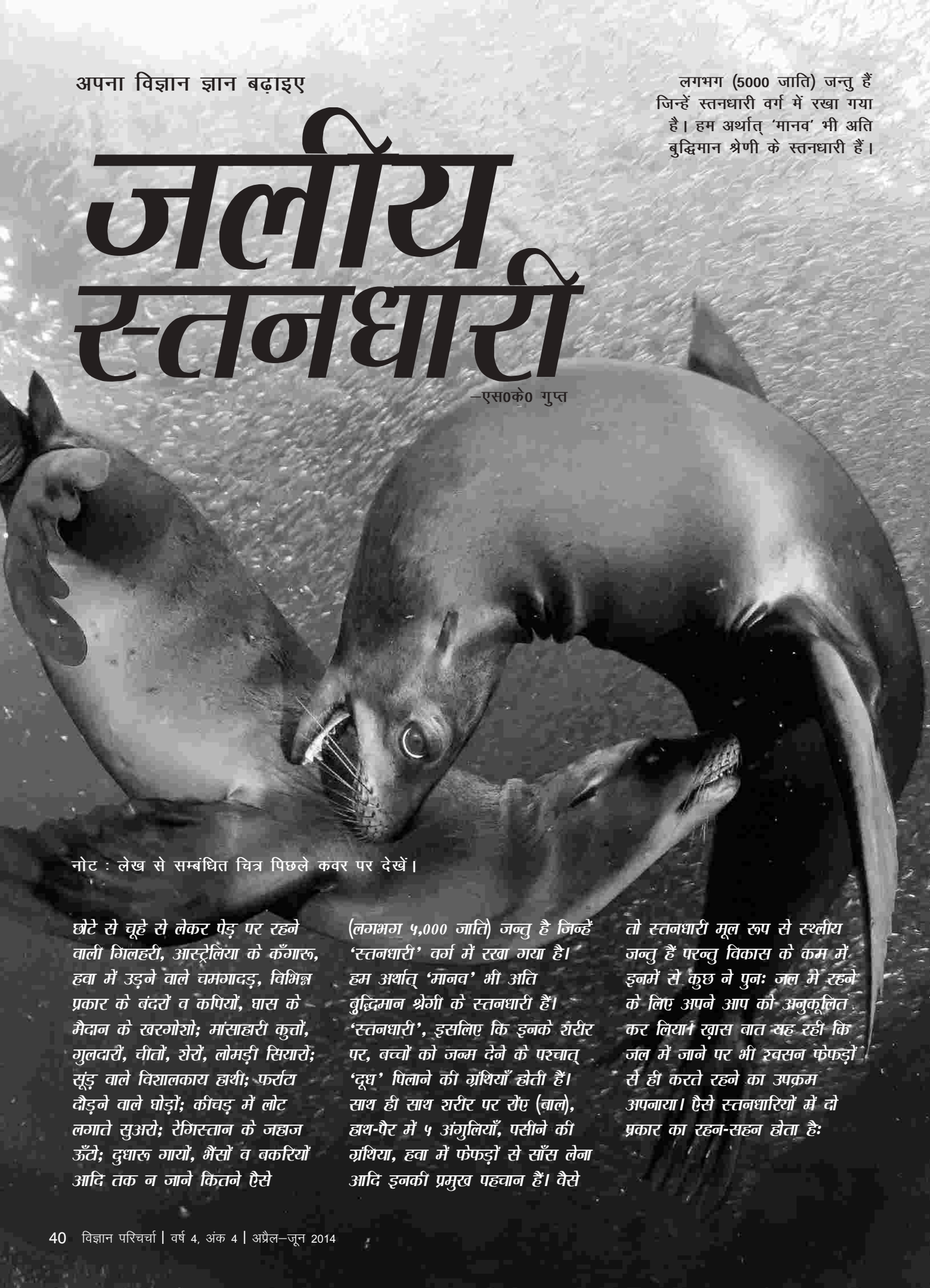

नोट : लेख से सम्बंधित चित्र पिछले कवर पर देखें।

छोटे से चूहे से लेकर पेड़ पर रहने वाली गिलहरी, आस्ट्रेलिया के कँगारू, हवा में उड़ने वाले चमगादड़, विभिन्न प्रकार के बंदरों व कपियों, घास के मैदान के खरगोशों; मांसाहारी कुत्तों, गुलदारों, चीतों, शेरों, लोमड़ी सियारों; सूंड़ वाले विशालकाय हाथी; फर्राटा दौड़ने वाले घोड़ों; कीचड़ में लोट लगाते सुअरों; रेगिस्तान के जहाज ऊँटों; दुधारू गायों, भैंसों व बकरियों आदि तक न जाने कितने ऐसे (लगभग ५,000 जाति) जन्तु है जिन्हें 'स्तनधारी' वर्ग में रखा गया है। हम अर्थात् 'मानव' भी अति बुद्धिमान श्रेणी के स्तनधारी हैं। 'स्तनधारी', इसलिए कि इनके शरीर पर, बच्चों को जन्म देने के पश्चात् 'दूध' पिलाने की ग्रंथियाँ होती हैं। साथ ही साथ शरीर पर रोंए (बाल), हाथ-पैर में ५ अंगुलियाँ, पसीने की ग्रंथिया, हवा में फेफड़ों से साँस लेना आदि इनकी प्रमुख पहचान हैं। वैसे तो स्तनधारी मूल रूप से स्थलीय जन्तु हैं परन्तु विकास के कम में इनमें से कुछ ने पुनः जल में रहने के लिए अपने आप को अनुकूलित कर लिया। ख़ास बात यह रही कि जल में जाने पर भी श्वसन फेफड़ों से ही करते रहने का उपक्रम अपनाया। ऐसे स्तनधारियों में दो प्रकार का रहन-सहन होता हैः

• **उभमचर स्तनधारी :** अर्थात् वे जो स्थाई रूप से जल में नहीं रहते परन्तु जल में वे भोजन व आश्रय पाने के लिए आते–जाते रहते हैं। इनमें प्रमुख हैं– विभिन्न प्रकार की मांसाहारी **'सीलें', समुद्री शेर (सी.लायन), ऊदबिलाऊ (ऑटर) व शाकाहारी दरयायी घोड़े (हिप्पोपोटेमस)।**

• **पूर्णतिः जलीय स्तनधारी** : अर्थात् वे जो स्थाई रूप से जल में ही जीवन व्यतीत करते हैं। इनके महत्वपूर्ण उदाहरण हैं मछली जैसी विभिन्न प्रकार की **व्हेलें, डॉलफिन, पॉरप्वाएज़** (शिंशुक) व **समुद्री गायें** (मेनेटी व ड्यूगाँग)।

आईये इस अंक में परिचय करते हैं, अपने आप में विचित्र जल–स्थलीय (उभयचर) स्तनधारियों से।

उभमचर स्तनधारियों में आंशिक जलीय अनुकूलन होते हैं तथा ये मुख्यतः दो प्रमुख स्तनधारी समूह से सम्बंधित होते हैं।

• **माँसाहारी स्तनधारी** : (शेर, चीते, कुत्ते, सियार आदि वाला समूह) : इस समूह में **'सील', 'सी–लायन' 'वालरस' व 'ऊदबिलाऊ'** नाम से जाने जाने वाले उभयचर स्तनधारी प्रमुख हैं।

• **दो खुर वाले स्तनधारी** : (गाय, भैंस, याक, सुअर, ऊँट, हिस्सा आदि वाला समूह) : इस समूह से सम्बंधित उभयचर स्तनधारी, शाकाहारी **'दरयायी घोड़े'** के नाम से प्रसिद्ध है।

1.'सील' : तकनीकी भाषा में **'सीलें'** मछली की आकृति वाले वे स्तनधारी हैं जो **'पिन्नीपेड'** (पिच्छ या पंखनुमा पैर वाले) समूह में रखे गये हैं। इस समूह में 'सीलों' के अन्तर्गत दो प्रकार की 'सील' आती हैं, एक वे जिनमें बाहरी कान (कर्ण पल्लव) होता है, और दूसरी वे जिनमें बाहरी कान नहीं होता। प्रथम प्रकार की सीलों को **कर्णयुक्त सील** व दूसरी प्रकार की सीलों को **कर्णवीहीन सील** अथवा **वास्तविक सील** कहते हैं।

• **कर्णयुक्त सीलें (ओटाराईडी कुल)** : इनमें प्रमुख रूप से **सी–लायन** व **रोंयेदार सीलें (फ़र–सील)** सम्मिलित हैं। इनमें आगे के पैर चप्पू समान (फ्लीप्पर) और तैरने में सहायक होते हैं। कर्णविहीन सीलों के विपरीत पीछे के चप्पूनुमा पैर आगे की ओर मुड़ (घुमाए) सकते हैं और मुख्य रूप से 'चलने' में सहायक होते हैं। ये सभी समुद्री हैं और इनमें दूध ग्रंथियों के 4 'थन' होते हैं।

(i) सी–लायन (समुद्री शेर) (चित्र–1)

ये विशालकाय समुद्री स्तनधारी उत्तरी व दक्षिणी गोलार्ध के उप–आर्कटिक क्षेत्र (सब–आर्कटिक) से लेकर उष्णकटिबन्धीय (ट्रोपिकल) सागरों में कैलीफोर्निया तक पाये जाते हैं। विश्व में कुल मिलाकर इनकी सात जातियाँ ***(ज़ैलोफस व यूमेटोपिआस वंश)*** पायी जाती हैं, जिनमें से **'जापानी सी–लायन'** (नर 450 से 560 कि0ग्रा0 व 2.3 से 2.5 मी0 लम्बें; मादा लगभग 1.6 मी0), 1970 के दशक के प्रारम्भ में लुप्त हो चुके हैं। शेष 6 जातियों में **केलिफोर्निया सी–लायन, स्टेलर सी–लायन, आस्ट्रेलियन सी–लायन, गैलपेगोज़ सी–लायन** (अफ्रीका से सटे टापुओं पर), **न्यूज़ीलैण्ड सी–लायन एवं दक्षिणी अमरीकी सी–लायन** जीवित हैं।

उपर्युक्त सभी में **स्टेलर सी–लायन'** सबसे विशालकाय (नर 3.0–3.4 मी0, 1,120 कि0ग्रा0; मादा 2.5–3.0 मी0, 350 कि0ग्रा0) हैं, और इन्हें **उत्तरी समुद्री सी–लायन** कहा जाता है। न्यू–जीलैंड सी–लायन, वहाँ पाये जाने वाले सबसे बड़े जन्तुओं में से एक है।

सभी सी–लायन हज़ारों की संख्या में झुंड **(पॉड)** बनाकर रहते हैं और अपनी सुरक्षा के लिए जल व थल दोनों में एक दूसरे के समीप रहते हैं। नर को **'साँड'** (बुल), मादा को **'गाय'** (काऊ) तथा इनके बच्चों को **'पिल्ला'** (पप्) कहा जाता है। एक 'सी–लायन' 180मी0 तक डुबकी लगा सकता है और कम से कम 40 मिनट तक जल के भीतर रह सकता है। सामान्यतः ये 6.0 से 15.5 कि0मी0 की रफ़्तार से तैर सकने मे सक्षम होते हैं। ऐसा माना जाता है कि इनकी देखने की शाक्ति अच्छी नहीं होती और ये निकटदृष्टि वाले होते हैं।

माँसाहारी स्वभाव के कारण मछलियाँ इनका प्रिय भोजन है और ये एक बार में 7.0–16.0 कि0 ग्राम (शरीर के भार का लगभग 5–8%) भोजन चट कर जाते हैं। औसतन इनका जीवन काल 20 वर्ष (पालतू होने पर 30 वर्ष तक) होता है।

'पालतू' शब्द प्रयोग करने पर यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'सी–लायन' को अधिक बुद्धिमान जन्तु माना जाता है, और इसी कारण इन्हें मनोरंजन के लिए जलीय क्रीड़ाएँ करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस कार्य के लिए संयुक्त राज्य अमरीका की नौ–सेना ने इन्हें अपनी सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रशिक्षित किया (जैसे बम आदि का पता लगाना)।

चिड़िया घरों व जल–जीव कुण्डों (एक्वेरियम) में ये विशेष आकर्षण का केन्द्र होते हैं जहाँ इन्हें नाक पर गेंद उछालते (चित्र 1) व ताली बजाते देखा जा सकता है। वर्ष 2011 में केलीफोर्निया सी–लायन (**'रोनन'** नाम से प्रसिद्ध) संगीत की धुन पर ताल से ताल मिलाकर सिर मटकाने के लिए काफी चर्चित रहा।

एक मादा का गर्भ–काल 8 से 11 माह तक का होता है, और बच्चों (पप्) का जन्म थल पर होता है। जन्म के समय इनका भार लगभग 23 कि0ग्रा0 होता है तथा 1वर्ष का होते–होते ये 1.8 मी0 लम्बे व 90 कि0ग्रा0 तक के हो जाते हैं। 4–5 वर्ष का हो जाने पर ये लैंगिक रूप से परिपक्व होते हैं। नर एक से अधिक मादाओं (14 से भी अधिक) से समागम करते हैं तथा वे आक्रामक प्रदर्शन कर व लगातार, तीव्र भौंकने जैसी ध्वनियाँ निकाल कर अपनी सीमाओं को सुरक्षित रखते हैं।

सी–लायन के शत्रु भी होते हैं। जब ये जल में जाते हैं तो इन पर **'किलर व्हेल'** व **'शार्क'** मछलियों के आक्रमण का खतरा रहता है। मानव भी 'सी–लायन' के अस्तित्व के लिए लम्बे समय से एक चुनौती रहा है। जानकर आश्चर्य होगा की **'अलास्का'** (उत्तरी अमेरिका के उत्तर पश्चिम में एक राज्य) के निवासियों के लिए **'स्टेलर सी–लायन'** प्रागैतिहासिक काल से ही बहुत महत्व के रहे हैं। पुरातात्विक अन्वेषणों से ज्ञात हुआ है कि अलास्का के पेनिन्सुला भाग में 6,000 वर्ष पुराने 300 ऐसे प्राचीन गाँव थे जहाँ से लगभग 1,00,000 समुद्री स्तनधारियों, पक्षियों व मछलियों की हड्डियों के अवशेष एकत्र किये गये। मानववैज्ञानिकों (एन्थ्रोपोलोजिस्ट) का मानना है कि 400 वर्ष पूर्व अलास्का के 'आलीउट' टापू पर रहने वाले 25,000 निवासियों के लिए प्रतिवर्ष **5,000** से **10,000 'स्टेलर सी–लायन'** की आवश्यकता होती थी। वे इनका शिकार (बर्छी भालों से) माँस व चर्बी के लिए करते थे। हड्डियों व गलमुच्छों (व्हीस्कर या नाक के दोनों ओर बड़े व कठोर बाल) से विभिन्न प्रकार के औज़ार बनाये जाते थे (जैसे अफीम पीने के पाईप को साफ करने के लिए); पेशियों को हड्डी से जोड़ने वाले रस्सी–नुमा स्नायु

(टेंडन) से रस्सियाँ, आँत व आमाशय से जलरोधक बर्तन व कपड़े एवं खाल का उपयोग एक प्रकार की नाव (**डारका,** BAIDARKA) बनाने के लिए किया जाता था। व्यापक स्तर पर मछली पकड़ने वालों के लिए 'सी–लायन' बाधक होते हैं, इसलिए वे मछुआरों की बन्दूक की गोलियों का भी शिकार होते रहते हैं। **'समुद्री स्तनधारी सुरक्षा अधिनियम (1972)'** के प्रभावी होने से सी–लायन के अस्तित्व पर मंडराते ख़तरे में कमी आई है।

सी–लायन द्वारा मनुष्य पर आक्रमण की घटनाएँ बहुत कम सुनने में आई हैं, हाँ! सन् 2007 में पश्चिमी आस्ट्रेलिया में जब एक 13 वर्षीय लड़की नौका के पीछे जल सतह पर सीधे खड़े रह कर **'सर्फिंग'** (तैराकी) कर रही थी तो अचानक एक सी–लायन ने छलाँग लगाई और उस बालिका को गम्भीर रूप से घायल कर दिया। दूसरे आक्रमण के प्रयास से पूर्व ही उसे बचा लिया गया। समुद्री जीव वैज्ञानिकों का मानना था कि शायद उस सी–लायन ने उस लड़की को खेलने वाली एक गुड़िया समझ कर उस पर छलाँग लगाई। पुरातन **'पेरू'** (दक्षिणी अमेरिका का एक देश) के **'मोश'** जाति के लोग समुद्र व उसके जन्तुओं की पूजा करते थे और अक्सर सी–लायनों को अपनी कलाकृति में दर्शाते थे।

(ii) फर–सील (रोयेंदार सील)
(चित्र–2)

जैसा कि नाम से स्पष्ट है ये सीलें शरीर पर उपस्थित रोमों (बाल) के आवरण के कारण शिकारियों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहीं हैं। अन्य सीलों की तुलना में इनकी खाल के नीचे उष्मा–रोधी चर्बी की पर्त नहीं होती, वरन् खाल पर कोमल रोयों की घनी पर्त होती है जिनके बीच–बीच में उपस्थित लम्बे, कड़े (सींक–नुमा) बाल नीचे की रोंयेदार पर्त को सुरक्षित रखते हैं। इसी मोटी रोयेंदार पर्त से शरीर गर्म रहता है। यह इसलिए, कि ये फर–सीलें **उत्तरी व दक्षिणी–सागर तटों** के सर्द वातावरण में रहती हैं।

फर–सीलों की कुल **9 जातियों** में से एक **उत्तरी प्रशांत** व **बेरिंग सागर** में पायी जाती हैं; इसी कारण इसे **'उत्तरी फर–सील'** (NORTHERN FUR-SEAL) कहते हैं। शेष 8 जातियाँ **दक्षिणी गोलार्ध** में पाये जाने के कारणा **'दक्षिणी फर–सील'** (SOUTHERN FUR-SEAL) कहलाती हैं।

• **उत्तरी फर–सील *(कैलोराहिनस उरसाईनस)*** : ये सील मुख्यतः दो प्रकार के आवासों का उपयोग करती हैं भोजन करने के लिए उत्तरी प्रशांत के खुले सागर व प्रजनन के लिए चट्टानी तट। वयस्क सील अपने जीवन का 80% (प्रतिवर्ष 300 दिन से अधिक) समय समुद्र में भोजन करने में व्यतीत करती हैं। शरद ऋतु में इनकी दक्षिणी सीमा, प्रशांत महासागर में **दक्षिणी कैलीफोर्निया** तथा **ओखोत्सक समुद्र** व जापान के **होन्शू टापू** के मध्य होती है। वसन्त ऋतु में अधिकाँश सीलें, प्रजनन के लिए उत्तर में बेरिंग सागर की ओर गमन कर जाती हैं। प्रजनन काल के प्रारम्भ में (मई माह) नर अपनी सीमाएँ **(टेरीटरी)** स्थापित कर लेते हैं। मादाओं का आगमन मध्य जून से जुलाई आरम्भ के बीच होता है और लगभग 1 वर्ष के गर्भकाल पश्चात् वे एक–एक पिल्ले (पप्) को जन्म देती हैं। जनन काल के समय मादाएँ एकान्तर क्रम में समुद्र मे जाकर मछलियों का भोजन करती हैं और तट पर आकर शिशुओं का लालन–पालन करती हैं। जब मादाएँ भोजन कर रही होती हैं तब पिल्ले आपस में क्रीड़ा करते हैं या समूह **('पप्पी पॉड')** में सोते हैं। वापस आने पर मादाएँ अपने–अपने बच्चों को सूँध कर या आवाज़ें सुनकर पहचानती हैं। 4 से 5 माह के पश्चात् बच्चों को दूध पिलाना बंद कर दिया जाता है। जनन काल समाप्ति पर सीलें दक्षिण की ओर चली जाती हैं। नर (2 मी0, 270 कि0ग्रा0) का जीवन काल 10 वर्ष व मादा (1.5 मी, 60 कि0ग्रा0) का 27 वर्ष होता है। इन सबका शरीर गठीला, सिर छोटा व अत्यधिक छोटे थूथन (स्नाऊट) वाला होता है। रंग भूरा, सलेटी अथवा काला होता है। सी–लायन की तुलना में इनके चप्पूनुमा पैर (फ्लीप्पर) सबसे लम्बे (शरीर की लम्बाई का लगभग एक चौथाई) होते हैं।

19 वीं शताब्दी में उत्तरी फ़र–सीलों का फ़र के लिए इतना शिकार किया गया कि वे लुप्त होने की कगार पर पहुँच गई थी। 1911 में इनकी सुरक्षा हेतु बनाए गए कानून के कारण इनकी जनसंख्या में पुनः वृद्धि होना प्रारम्भ हो गई। एक अनुमान के अनुसार पूर्वी प्रशांत सागर में इनकी संख्या लगभग 6,00,000 है, जो 1940 से 1950 के बीच लगभग 2.1 करोड़ थी। मनुष्य के अतिरिक्त बड़े सी–लायन, शार्क व किलर व्हेल इनके प्राकृतिक शिकारी हैं।

• **दक्षिणी फ़र–सील *(अर्किटोसीफ़ेलस वंश)*** : दक्षिणी गोलार्ध के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली सभी **8 जातियाँ** सी–लायन की तुलना में छोटी और संरक्षण की दृष्टि से **संकटग्रस्त** हैं।

शरीर पर रोयों की घनी पर्त, बड़े नरों (आयु 15 वर्ष); छोटी मादाओं (आयु 23 वर्ष), औसतन 3–4 मिनट तक 30–40 मी0 की गहराई तक गोते लगाने वाली; तीव्र दृष्टि व स्पष्ट सुनने की क्षमता वाली; 8–12 माह के गर्भकाल, 7 वर्ष की आयु पर परिपक्व नर, 3 वर्ष की आयु पर परिपक्व मादा; 7 माह से 3 वर्ष तक पिल्लों (पप्) का पालन करने वाली (नवजात पिल्ला 60–65 से0मी0 लम्बा व 3.5–5.5 कि0ग्रा0 भार वाला); रात्रि में मछलियों, समुद्रफेनी (SQUID; दस भुजाओं वाला, सीपी घोंघों वाले मोलस्का संघ का सदस्य), झींगों, केकड़ों, पैंग्विन पक्षी आदि पर भोजन करने वाली – **सभी 8 दक्षिणी फ़र–सील जातियाँ** निम्न प्रकार हैं:–

• **दक्षिणी अमरीकी फ़र–सील *(आर्कटोसिफेलस आस्ट्रेलिस)*** : पेरू से ब्राजील के तटों, फाकलैंड टापुओं तथा दक्षिणी जिओरजिया पर पायी जाने वाली ये सीले 1.4–2.6 मी0 लम्बी व 30–200 कि0ग्रा0 भार वाली होती हैं। नर गहरे सलेटी (गर्दन पर लम्बे बाल) व मादाएँ पीली–भूरी होती हैं।

• **अध–दक्षिणी ध्रुविय** (SUBANTARCTIC) फ़र–सील ***(आर्क0 ट्रोपीकेलिस)***:

सब–एन्टार्कटिक समुद्र के टापुओं पर / 1.2–1.8मी0 / 50–140 कि0ग्रा0 / गहरे सलेटी भूरी / फ़र के लिए शिकार के कारण 19वीं शताब्दी में लुप्त प्राय।

• **न्यूज़ीलैण्ड फ़र–सील *(आर्क0 फोर्सटेरी)*** :

न्यूज़ीलैण्ड के साऊथ आईलैंड, बाँऊटी आईलैंड व दक्षिणी–पश्चिमी आस्ट्रेलिया के तटों पर। 1.2–2.5 मी0 / 30–180 कि0ग्रा0 / जन्म के समय काली अथवा भूरी, परन्तु वयस्क होने पर चाँदी–सलेटी अथवा भूरी। 'माओरी' (न्यूज़ीलैण्ड की आदि जन जाति) भाषा में 'केकेनो' कहलाती हैं।

• **भूरी फ़र–सील** अथवा **केप फ़र–सील *(आर्क0 पुसिलस)*** : इन फ़र–सीलों का सिर बड़ा और चौड़ा तथा थूथन (SNOUT) नुकीला एवं ऊपर की ओर मुड़ा होता है। विशेषतः नर के गलमुच्छे (WHISKERS अथवा VIBRISSAE) इतने बड़े होते हैं कि वे कर्णपल्लव से भी पीछे तक पहुँच जाते हैं। आगे के चप्पूनुमा पैरों की लगभग 3/4 सतह छितरे हुए बालों से ढकी रहती है। पिछले पैर के चप्पू तुलनात्मक दृष्टि से छोटे होते हैं और उनकी अंगुलियों के सिरे मांसल होते हैं।

भूरी फ़र–सीलें अधिक गठीली व सबसे बड़ी होती हैं। वितरण के आधार पर इनकी दो उपजातियों की पहचान की गई है:

• **दक्षिणी अफ्रीकी फ़र–सील *(आर्क0***

पुसिलस पुसिलस) : अफ्रीका के दक्षिणी व दक्षिणी पश्चिमी तटों पर नामीबिया के केप–क्रास तथा केप ऑफ गुड होप से पूर्वी केप राज्य के पोर्ट एलिजाबेथ तक / 2.3 मी0/200–300 कि0ग्रा0/मादाएँ 1.8 मी0 तथा 120 कि0ग्रा0।

इस सील के शिकार को 1990 में प्रतिबन्धित कर दिया गया।

• **आस्ट्रेलियन फ़र–सील *(आर्क0 पुसिलस डोरीफेरस)*** : दक्षिणी पूर्वी आस्ट्रेलिया के 'बास जल डमरू मध्य' (BASS STRAIT) में विक्टोरिया के समीप चार टापुओं पर तथा तस्मानिया के पाँच टापुओं पर वितरित। 2.0–2.2 मी0/190–280 कि0ग्रा0/मादाएँ 1.2–1.8 मी तथा 36–110 कि0ग्रा0। बहुमूल्य फ़र के लिए 1798 एवं 1825 के बीच इनका व्यापक स्तर पर शिकार हुआ। 1923 में शिकार पर प्रतिबन्ध लगा।

• **एन्टआर्कटिक फ़र–सील *(आर्क0 गजेला)*** : ग्रीष्म काल में ये सीलें (2.0मी0, 91–215 कि0ग्रा0) दक्षिण जिओरजिया (दक्षिण ध्रुव) के टापुओं पर जनन करती हैं परन्तु लम्बें अंधकारभय शीत काल में ये दक्षिणी ध्रुव के बर्फीले समुद्र पर जीवन व्यतीत करती हैं। इनकी थूथन छोटी व चौड़ी होती है। वयस्क नर गहरे भूरे रंग के होते हैं जबकी मादाएँ व शिशु सलेटी रंग के होते हैं। 1000 में से लगभग एक सील 'पीले सुनहरे बाल' वाली होती है। इनका प्रिय भोजन 'क्रिल' नामक झींगा है, जिसका 1 टन एक वर्ष में ये सीलें चटकर जाती हैं। 180 मी0 गहराई तक व सर्वाधिक 10 मिनट तक डुबकी लगाने की इनकी क्षमता है। उत्तरी अमेरीका व संयुक्त गणराज्य के सील–शिकारियों ने 18 वीं व 19 वीं शताब्दी में इनकी रोंयेदार खाल के लिए इतना शिकार किया कि ये पूर्णातः लुप्त मान ली गईं। वास्तव में दक्षिणा जिओरजिया के 'बर्ड आईलैण्ड' पर इनका एक छोटा सा समूह बचा रह गया। इसी समूह का पुनः फैलाव हुआ और दक्षिणा ध्रुव पर जनसंख्या में वृद्धि हुई

• 'दक्षिण–ध्रुवीय सीलों की संरक्षण सभा' (CONVENTION FOR THE PROTECTION OF ANTARCTIC SEALS) द्वारा इनका संरक्षण किया जाता है।

• **गैलापेगोज़ फ़र–सील *(आर्क0 गैलापेगोएन्सिस)*** : दक्षिण अमेरीका के इक्वेडोर प्रांत के पश्चिम में प्रशांत महासागरीय टापुओं के समूह पर वितरित/1.2–1.5 मी0/22–65 कि0ग्रा0/छोटा, नुकीला थूथन।

• **ग्वाडालूपे फ़र–सील *(आर्क0 टाऊनसेन्डी)*** : दक्षिणी–पश्चिमी केलीफोर्निया के ग्वाडालूपे टापुओं व पश्चिमी मैक्सीको में वितरित/1.4–1.9मी0/50–160कि0ग्रा0/गहरे भूरे रंग व गर्दन पीले या सलेटी लम्बे बाल (घोड़े के समान)।

• **जुऑन फ़र्नान्डीज़ फ़र–सील *(आर्क0 फिलीप्पाई)*** : प्रशान्त महासागर में दक्षिणी–पश्चिमी तट पर मध्य चिली (दक्षिणी अमेरीका का एक भाग) के समीप जुऑन फ़र्नान्डीज़ नामक टापुओं पर वितरित/1.4–2.0मी0/50–140कि0ग्रा0/लम्बा, नुकीला थूथन/नर भूरे, गर्दन पर भूरे–सलेटी लम्बे बाल/मादाएँ सलेटी/भूरी से गहरी भूरी/16वीं शताब्दी में जुऑन फ़र्नान्डीज़ नामक नाविक द्वारा खोज। सबसे छोटी पिन्नीपेड सील मानी जाती है।

• **कर्णविहीन सीलें अथवा घिसटने वाली या क्रालिंग–सील या वास्तविक सील अथवा फोसिड सीलें (फोसिडी कुल)** (चित्र 3 से 7)

वाह्य कर्ण रहित इन सीलों का शरीर अधिक चिकना, चमकीला, पतला, धारारेखित (STREAMLINED) होता है। ये दोनों गोलार्धों के महासागरों में पायी जाती हैं और एक उष्णकटिबन्धीय (TROPICAL) जाति को छोड़कर, अधिकाँशतः ध्रुवीय, उपध्रुवीय तथा समशीतोष्ण (TEMPERATE) जलवायु वाले क्षेत्रों में वास करती हैं।

कुल मिलाकार इनकी **18 जातियाँ 10 वंशों से** सम्बंधित हैं:

(i) ***फोका वंश* (कॉमन सील)** : **7** उत्तरी गोलार्धीय जातियाँ–बैकाल सील (चित्र–3) कैस्पियन सील, हार्बर सील, हार्प सील (चित्र–4), रिब्बन सील, रिंग्ड सील तथा स्पॉटेड सील।

(ii) ***मोनेकस* वंश (मोन्क या साधु सील) (चित्र–5)**: भूमध्यसागर व उत्तर प्रशांत महासागर में उत्तरी अमेरिका के ***'हवाई'*** (HAWAII) टापुओं पर **2** जातियाँ।

(iii) ***माईरोउँगा वंश* (हाथी या एलीफेंट सील) (चित्र–6)** : **2** तटीय जातियाँ, एक दक्षिणी गोलार्ध से तथा दूसरी 'बाजा कैलीफोर्निया प्रायद्वीप' से दक्षिणी–पूर्व अलास्का तक।

(iv) ***सिस्टोफोरा वंश* (हुडेड सील) (चित्र–7)** : उत्तरी अटलॉटिक व आर्कटिक (उत्तर–ध्रुवीय) क्षेत्र की **1 जाति**।

(v) ***इरीनेथस वंश* (दाढ़ी वाली या बिअरडेड सील)** : **1** उत्तर–ध्रुवीय जाति।

(vi) ***हेलीकोएरस वंश* (सलेटी या ग्रे–सील)** : **एक** उत्तरी अटलॉटिक सागरीय जाति।

(vii) ***हाईड्रूरूगा वंश* (तेंदुआ या लेपर्ड–सील)** : **एक** दक्षिण–ध्रुवीय (एण्टार्कटिक) जाति।

(viii) ***लेप्टोनाईकोटीज वंश* (वीडेल–सील)** : दक्षिण ध्रुव प्रायद्वीप के पूर्व में अटलॉटिक महासागर के 'वीडेल सागर' मे पायी जाने वाली **एक जाति**।

(xi) ***लोबोडॉन वंश* (क्रेब** अथवा **केकड़ा–भक्षी सील)** : **एक दक्षिण**–ध्रुवीय जाति।

(x) ***ओमेटोफोका वंश* (रॉस सील)** : **एक** दक्षिण–ध्रुवीय जाति।

सील–विविधता पर ध्यान केन्द्रित करते हुए कुछ सीलों के महत्वपूर्ण लक्षण/तथ्य बरबस ही ध्यान आकर्षित करते हैं। फिर भी **सभी कर्णाविहीन सीलों के सामान्य गुणों का उल्लेख यहाँ करना आवश्यक है, जैसे**– ये सभी अच्छी तैराक हैं और तैरते समय अपने आगे के चप्पूनुमा पैरों को जल में तैरने और किसी भी दिशा में घुमाने में प्रयोग करती हैं। शरीर को आगे धकेलने के लिए पिछले पैर के चप्पुओं को दाएँ–बाएँ (मछली की तरह) स्पंदन कराया जाता है। क्योंकि पिछले पैर के चप्पू आगे नहीं घुमाए जा सकते (जैसा कि सी–लायन में होता है) इसलिए जब ये धरती पर होती हैं तो ये अपने उदर के सहारे कूद–कूद कर या घसीट कर आगे बढ़ती हैं और इसमें ये अपने आगे के चप्पू–पैरों का उपयोग करती हैं (धरती पर चलते समय सी–लायन) अपने चारों पैरों का उपयोग करते हैं।) इनका मुख्य भोजन मछली, केकड़े, भींगे, पैंग्विन पक्षी व अन्य सीलें होती हैं, हालाँकि जाति आधार पर कुछ भिन्नता भी होती है। औसतन सभी का गर्भकाल 11 माह होता है। जन्म देने के ठीक बाद ये पुनः गर्भवती हो जाती हैं। बच्चों का जन्म बर्फ पर या बर्फ की गुफा में होता है। माँ के दूध में 50% वसा होती है और बच्चों का लालन–पालन करते समय ये भोजन नहीं करती।

बैकाल सील *(फ़ोका साईब्रीरीका)*

एकमात्र स्वच्छ जलीय सील है, जो साईबेरिया की बैकाल झील में पायी जाती है और **सबसे छोटी** (1.1–1.4 मी0; 50–130कि0ग्रा0) होती है (चित्र–3)। अन्य भोजन की तुलना में इनका सबसे प्रिय भोजन बैकाल लेक में पायी जाने वाली **'गोलोमायन्का'** नामक मछली (जो बच्चों को जन्म देती है) है। प्रतिवर्ष ये इनका 64,000 टन चट कर जाती हैं। ये 10–20 मिनट तक डुबकी लगाकर प्रिय भोजन करती रहती है। अपने माप की सीलों की तुलना में इनके शरीर में 2 लि0 रक्त अधिक होता है, और ख़तरा होने पर ये जल के भीतर 70 मिनट तक रह सकती हैं। ठंडे जल में दृष्टि अधिक प्रभावित होने पर ये सीलें मादाओं को पहचानने में त्रुटि कर देती हैं और अन्य नरों के साथ समलैंगिक आचरण करती देखी गई हैं। गर्भवती मादाएँ शरद् ऋतु में बाहर आती हैं परन्तु सभी नर पूर्ण शरद् काल में बर्फ के नीचे ही रहते हैं। वैसे तो सीलें एक ही बच्चा पैदा करती हैं परन्तु ये जुड़वाँ बच्चों को भी जन्म देती हैं। **ऐलीफेंट सील** वह **सबसे बड़ी** सील (चित्र–6) है जिसकी उत्तरी व दक्षिणी दो जातियाँ हैं। **उत्तरी एलीफेंट सील** (4.3–4.9 मी0, 2455 कि0ग्रा0) दक्षिणी की तुलना में छोटी होती है तथा उत्तरी अमेरिका, कनाडा व मैक्सिको के प्रशाँत महासागरीय तटों पर पायी जाती हैं। दूसरी ओर **दक्षिणी एलीफेंट सीलें** (नर 4.9 मी0 –

'सील' का शिकार व 'सील' के प्रमुख उत्पाद : कुछ तथ्य!

● वर्तमान में सील का शिकार कनाडा, नामीबिया, ग्रीनलैंड, आईसलैंड, नोर्वे तथा रूस के क्षेत्रों में होता है। कनाडा में सबसे अधिक शिकार होता है।

● कनाडा में सील शिकार का नियंत्रण **'कनाडा के मत्स्य एवं सागर विभाग'** (CANADIAN DEPARTMENT OF FISHERIES AND OCEANS) करता है और एक अनुमान के अनुसार सील–शिकार का वर्ष 2010 में निर्धारित लक्ष्य 67,000 था।

● कनाडा में नवजात **'हार्प–सील'** ('WHITECOAT') (चित्र–4) व **'हुड–सील'** (BLUEBACKS) (चित्र–7) का शिकार गैर–कानूनी है। नवजात वास्तविक सीलों (कर्णविहीन सील) की रोंयेदार खाल पीलापन लिए एवं नम होती है। जब पिल्ले का शरीर सूख जाता है तब इसे **'यलोकोट'** (YELLOWCOAT) कहते हैं। कुछ समय पश्चात् इसके सफेद हो जाने पर इसे **'व्हाईटकोट'** (WHITECOAT) कहते हैं।

● वास्तविक सीलों की मादाएँ 12 दिनों तक बच्चों को दूध पिलाती हैं, जिसके पश्चात् उनके सफेद रामों के नीचे सलेटी रंग के रोम वृद्धि कर चुके होते हैं। तब इन्हें **'रेगेड–जेकेट्स'** (RAGGED-JACKET) कहा जाता हैं। यह वह अवस्था है जब इनकी ऊपर की खाल का प्रथम निर्मोचन (खाल उतरना, जैसे केकड़ों, झींगों आदि में होता है) हो रहा होता है। 12–14 दिनों तक इनको माँ का लालन–पालन नहीं मिलता और ये बर्फ से ढकी सतह पर ही रहते हैं और अपना पुराना सफेद चोला उतार फेंकते हैं। जब इनका यह चोला टुकड़ों–टुकड़ों में उतरता है, तब इन्हें **'बीटर'** (BEATER) कहते हैं क्योंकि इस समय ये जल में तैरने के लिए हाथ–पैर मारना प्रारम्भ कर देते हैं।

● पुरातात्विक प्रमाण बताते हैं कि कनाडा व उत्तरी अमेरिका के निवासी 4,000 वर्षों से सीलों का शिकार कर रहे हैं।

● ग्रीनलैंड, कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के स्थानीय निवासियों को **'इन्यूट' (**INUIT**)** कहते हैं, जिनका मुख्य भोजन मछली, व्हेल एवं सील होता है। सीलों के माँस से वसा, प्रोटीन विटामिन 'ए' तथा 'बी' एवं लोह की पूर्ति होती है। रोयेदार खाल से शरीर को गर्म रखने के लिए कपड़े बनाये जाते हैं।

● यूरोपीय निवासियों द्वारा सीलों का शिकार 1515 में तब प्रारम्भ हुआ जब **'यूरूग्वे'** से रोंयेदार खालों से भरा जहाज उनकी बिक्री के लिए **'स्पेन'** भेजा गया।

● कनाडा के शिकारी बन्दूक से सीलों का शिकार करते हैं परन्तु सबसे पुराना व पारम्परिक ढंग **'हाकापिक'** नामक हथौड़े का प्रयोग करना है। यह लकड़ी के डंडे पर लगा हथौड़ा सिरे पर 'हुक' जैसी संरचना वाला होता हैं। हथौड़े वाले सिरे से कोमल खोपड़ी पर तीव्र प्रहार किया जाता है और 'हुक' वाले भाग से मृत सील को एक ओर खिसकाया जाता है।

● जहाँ सील की रोंयेदार खाल से जलरोधी जैकेट, कोट व जूते बनाए जाते हैं, इनका माँस स्थानीय जन के लिए भोजन का प्रमुख स्रोत है और इसे एशिया के पालतू जानवरों के भोजन के रूप में बेचा जाता है। सील की चर्बी **(ब्लबर)** से तेल बनाकर मछली के तेल के स्थानापन्न के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त तेल का उपयोग लैम्प जलाने, खाना पकाने, साबुन बनाने, चमड़ा व जूट तैयार करने आदि में भी किया जाता है।

6.1 मी0; 3000–4000 कि0ग्रा0; मादाएँ 3.0 मी0; 910 कि0ग्रा0) दक्षिणी गोलार्ध में दक्षिण जिओरजिया व मैक्वेरी टापुओं तथा न्यूज़ीलैंड, दक्षिण अफ्रिका व अर्जेनटाईना के तटों पर वास करती हैं। **'हाथी (एलीफेंट) सील'** नाम इसलिए पड़ा कि हाथी के समान इनमें एक **'सूँड़'**, वयस्क नरों में पायी जाती है। इस 'सूँड़' का उपयोग वे 'साँड' (नर), जनन काल में, चिंधाड़ने जैसी ध्वनि निकालने के लिए करते हैं। विशेष एवं विचित्र तथ्य यह है कि इनकी **'सूँडनुमा नाक'** पूर्णश्वॉसक के रूप में कार्य करती है क्योंकि इस नाक में छोटे–छोटे छिद्र/गुहिकाएँ (CAVITIES) होते हैं जो साँस बाहर निकालते समय उसकी नमी को सोखती रहती हैं। यह इसलिए आवश्यक है कि जनन काल में ये समुद्र तट को छोड़ती नहीं हैं, और इसलिए जल संरक्षण का यह एक नायाब ढंग है। जानकर आश्चर्य होगा कि ऐलीफेंट सीलों के जीवन का 80% समय सागर की गहराइयों में ही व्यतीत होता है। पुनः आश्चर्य होगा कि ये सीलें 1,550 मी0 (कीर्तिमान दक्षिणी सील के नाम, 2,388 मी0) तक की गहराई तक डुबकी लगाने व 100 मिनट तक साँस रोके रखने की अभ्यस्त हैं। शरीर पर रोमों के साथ–साथ चर्बी की मोटी पर्त इन्हें ठंडक से बचाती है। 22 वर्ष जीवन काल वाली ये सीले 3–4 वर्ष की आयु में बच्चे पैदा करना प्रारम्भ कर देती हैं। भोजन? ये तो आक्टोपस, ईल मछली, छोटी शार्क आदि को भी चट कर जाती हैं।

सबसे छोटी व सबसे बड़ी कर्णविहीन सीलों के अतिरिक्त शेष 16 सील जातियो में से कुछ अन्य सीलों की विशिष्टताएँ निम्न प्रकार हैः

• **हुडेड सील *(सिस्टोफोरा क्रिसटेटा)*** (चित्र–7) : मध्य व पश्चिमी उत्तरी अटलाँटिक में पायी जाने वाली इस सील (नर 2.6 मी0, 300–410 कि0ग्रा0; मादा 2.03 मी0, 145–300 कि0ग्रा0) का रंग चमकीला–सलेटी व काले चकत्तेदार होता है। नाम (**'हुडेड'** अथवा **टोपी वाली**) के अनुरूप इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके सिर के ऊपर स्थित नासा–गुहा (NASAL CAVITY) अत्यधिक लचीली होती है और विशेषतः नर में यह बाएँ नासा छिद्र से बाहर की ओर गुलाबी रंग के गुब्बारे जैसी थैली के रूप में फूल कर लटक जाती है। जब इसे हिलाया जाता है तो, जल में या जल के बाहर, इससे विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं, जो आक्रामकता दर्शाने व लैंगिक आर्कषण का एक उपक्रम है। जब सील तैरती हैं तो इस **'हुड'** को गुब्बारे की तरह फुलाती व पिचकाती रहती हैं। 100–600 मी0 तक 5–25 मिनट के लिए डुबकी लगाने वाली इन सीलों का जीवन काल 30–35 वर्ष होता है। इनके बच्चों को नीले–सलेटी रोम आवरण (खाल) के कारणा **'ब्लू–बैक्स'** कहते हैं। वर्ष 1940 से पूर्व, इनका खाल (चमड़ा) व चर्बी के लिए, व्यापक शिकार होता था।

• **हार्प–सील *(पैगोफीलस ग्रोएनलैंडिकस)*** (चित्र–4) : सलेटी सुदूर उत्तरी प्रशांत व आर्कटिक सागर की निवासी, रंग की इस सील (1.7–2.0 मी0; 140–190 कि0ग्रा0) की पीठ पर काले **'हार्प'** (एक वाद्यय यंत्र) अथवा **'विश–बोन'** (पक्षियों में पायी जाने वाली 'वी' (V) आकृति की हँसली की

हड्डी) जैसा चिन्ह होता है, इसीलिए इसे **'हार्प–सील'** अथवा **'सैडल–बैक–सील'** कहते हैं। देखने की शक्ति तीव्र होती है, और बड़ी काली आँखों का लेंस गोलकार होता है। 30 वर्ष जीवनकाल वाली ये सीलें सागर में तैरना पसंद करती हैं और अत्यधिक गमनशील (MIGRATORY) होती हैं। इस कारण प्रजनन के लिए उत्तर–पूर्व दिशा में 4,000 कि0मी0 दूर तक चली जाती हैं।

• **हवाईयन मॉन्क सील *(मोनेकस शैउनस्लैंडी)*** (चित्र–5): हवाई टापुओं पर निवास करने वाली, सलेटी रंग की इन सीलों (नर 2.1 मी0, 140–180 कि0ग्रा0; मादा 2.4 मी0, 180–270 कि0ग्रा0) को **'हवाई'** (HAWAII) का **'राज्य स्तनधारी'** कहते हैं और क्योंकि इनके सिर पर छोटे–छोटे बाल होते हैं, इसीलिए इन्हें **'सन्यासी (मॉन्क) –सील'** कहा जाता है। इनके जीवन का अधिकाँश समय गहरे समुद्र (300 मी0) में भोजन करते व्यतीत होता है।

2. वालरस *(ओडोबेनस रोसमारस)* (चित्र–8) : कर्णयुक्त (सी–लायन) व कर्णविहीन सीलों के समान शरीर की आकृति, पिछले पैर के चप्पू को आगे की ओर घुमा लेने (सी–लायन) के समान) परन्तु वास्तविक सीलों की तरह तैरने व उदर के बल शरीर को घिसटा कर आगे बढ़ाने वाली एलीफेंट सीलों के बाद सबसे बड़े (4.9 मी0, 2,300 कि0ग्रा0), ये माँसाहारी उभमचर स्तनधारी (पिन्नीपेड समूह) उत्तरी ध्रुव के आर्कटिक सागर व उत्तरी गोलार्ध के सब–आर्कटिक समुद्र में पाये जाते हैं। तीन विशेष स्थानों पर पाये जाने के कारण इनकी 3 उपजातियों – **अंटलाँटिक वालरस, प्रशांत वालरस** तथा **लेपटेव वालरस** (आर्कटिक सागर के लेपटेव समुद्र में)– की पहचान की गई है। वयस्क वालरस की पहचान **भारी–भरकम शरीर, हाथी समान लम्बे बाहर को निकले 2 दाँतों (TUSK) व गलमुच्छों से होती है।**

जहाँ **प्रशाँत सागरीय वालरस** 2,300 कि0ग्रा0 (मादा 800 कि0ग्रा0) तक होते है वहीं **अटलाँटिक वालरस** औसतन 900 कि0ग्रा0 (मादा 560 कि0ग्रा0) होते है। इनकी चमड़ी पर छितरे हुए बाल के कारण खाल चिकनी प्रतीत होती है। 10 से0मी0 मोटी खाल के नीचे 15 से0मी0 मोटी चर्बी की पर्त (BLUBBER) होती है और नर की गर्दन व कंधों पर यह उभरी हुई गोल–गोल गाँठदार होती हैं। केवल खाल (चमड़ी) का कुल भार 450–500 कि0ग्रा0 तक हो सकता है। हाथी के समान बाहर को निकले **बड़े–लम्बे दाँत** (1मी0, 5.4 कि0ग्रा0) नर–मादा दोनों में होते हैं। नर से अधिक लम्बे व मोटे ये दाँत आक्रामकता दर्शाने, बर्फ में छेद करने व जल से बाहर आने के लिए बर्फ में गड़ा देने के काम आते हैं। वास्तव में ये दाँत ऊपर के **'कैनाईन'** (सामने के इन्साईज़र व दाढ़ के बीच नुकीले दाँत) होते हैं।

जहाँ तक **गलमुच्छे** (WHISKER अथवा VIBRISSAE) का प्रश्न है, यह थूथन के दोनों ओर 30 से0मी0 लम्बे, 13–15 पंक्तियों में व्यवस्थित 400–700, अत्यधिक संवेदनशील कठोर बालों की पर्त है, जिसे भोजन खोजने में प्रयुक्त किया जाता है। ये समुद्र सतह की बर्फीली चट्टानों से 80 मी0 गहराई तक समुद्र तल पर लगभग 50 से भी अधिक जन्तुओं का भक्षण करते हैं, परन्तु **'सीपियाँ'** इनका प्रिय भोजन हैं जिनके कठोर कवच में बंद कोमल माँस को होठों व जीभ द्वारा चूषणा दाब बनाकर मुँह में खींच लिया जाता हैं

20–30 वर्ष के जीवन काल वाले वालरस के नर 7 वर्ष की आयु पर लैंगिक परिपक्वता तो प्राप्त कर लेते हैं परन्तु समागम 15 वर्ष की आयु होने पर ही करते हैं। नर की **लिंग हड्डी** (PENIS BONE अथवा BACULUM) किसी भी थलीय स्तनधारी की तुलना में सबसे बड़ी (63 से0मी0) होती है।

प्रजनन जनवरी से मार्च के मध्य तब होता है जब बर्फीले चट्टानों पर एकत्र मादाओं के चारों ओर जल क्षेत्र में नर झुंड तीव्र, प्रतिस्पर्धात्मिक ध्वनियाँ करते हैं। मादाएँ आकर्षित हो, संभोग के लिए जल में ही चली जाती हैं। गर्भकाल 15–16 माह का होता है। पहले 3–4 माह भ्रूण को गर्भाणय में स्थापित करने में विलम्ब होता है (सभी सीलों में भी ऐसा ही होता है।) यह रणनीति शायद समागम–काल व जन्म–काल को सर्वथा अनुकूल बनाने के लिए अपनाई जाती है और इस कारण नवजातों की उत्तरजीविता (SURVIVAL) को बढ़ाया जाता है। अप्रैल–जून में 45–75 कि0ग्रा0 के बछड़े (CALVES) जन्म लेते हैं। दुग्धपान छुड़ाने के एक वर्ष तक मादाएँ लालन–पालन करती हैं परन्तु बच्चे अपनी माँओं के साथ 5 वर्ष तक रह सकते हैं। हर दो वर्ष पर मादाएँ गर्भवती होती हैं। दस हज़ार से भी अधिक की संख्या में चट्टानी तटों पर झुंड बनाकर रहने वाले वालरस वसन्त व ग्रीष्म ऋतु में हज़ारों कि0मी0 दूर गमन करते देखे गये हैं, उदाहरणतः बेरिंग समुद्र से प्रशाँत–सागरीय वालरस आर्कटिक क्षेत्रों में पूर्वी साईबेरिया के **चुकची समुद्र** (CHUKCHI) में चले जाते हैं।

किलर व्हेल तथा **ध्रुवीय–भालू** इनके दो प्राकृतिक शिकारी हैं। अमेरिकन व यूरोपियन मछुआरों द्वारा 18 वीं व 19 वीं शताब्दी में इनके माँस, चप्पुओं, चर्बी, दाँतों, हड्डियों, चमड़े, आँतो आदि के लिए व्यापक रूप से शिकार किया गया। शरद् ऋतु में परिरक्षित माँस (PRESERVED MEAT) को भोजन के रूप में, दाँतों व हड्डियों से औंज़ार तथा कलाकृतियाँ बनाने, चर्बी से प्राप्त तेल को जलाने, चमड़े से रस्सियाँ बनाने व घर एवं नौकाओं को ढकने के लिए, आँतो से जलरोधी कनटोपे वाली जैकेट बनाने आदि जैसे वालरस के उपयोग रहे हैं।

आर्कटिक क्षेत्र के निवासियों के लिए उनके **धर्म** व **लोक–परम्पराओं** में भी वालरस का महत्वपूर्ण स्थान है। हड्डियों व खाल का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता है और **पौराणिक कथाओं** में इनका उल्लेख व्यापक स्तर पर हुआ है। एक कथा के अनुसार (चुकची कथा) वालरस–सिर वाली एक बूढ़ी महिला समुद्र तल पर राज करती थी जिसका संबंध स्थानीय निवासियों **(इन्यूट)** की **'सेडना'** नामक देवी से बताया गया। अंग्रेज बच्चों के लिए लिखे गये साहित्य में भी वालरस का उल्लेख हुआ है, जैसे 1871 में प्रकाशित **'थ्रू द लुकिंग ग्लास'** (THROUGH THE LOOKING GLASS) नामक पुस्तक में **लुईस कैरोल** की एक कविता छपी थी, जिसका नाम था– **'द वालरस एण्ड द कारपेन्टर'**।

रूडयार्ड किपलिंग (RUDYARD KIPLING) की पुस्तक **'द जंगल बुक'** में **'द व्हाईट सील'** नामक कहानी वालरस पर ही आधारित है।

3. ऊदबिलाव अथवा **'ऑटर' (मस्टेलिडी कुल)** (चित्र–9–11) : माँसाहारी उभयचरों का एक अन्य समूह **'फिस्सीपीडिया'** (FISSIPEDIA) अर्थात् अलग–अलग अंगुलियों वाले पैर रखने वाले (यह वही समूह है जिसके अन्तर्गत शेर, चीता, भालू, भेड़िया, सियार आदि रखे गये हैं) स्तनधारियों का है। कुल **6 वंशों** व **13 जातियों** के ऑटर (OTTER) अथवा ऊदबिलाव नाम से जाने जाने वाले ये स्तनधारी जलीय अथवा अर्धजलीय होते है और इनका वितरण विश्वव्यापी है। स्वच्छ जल, खाड़ी जल व समुद्री जल में पाये जाने वाले ऊदबिलाव, आस्ट्रेलिया व एण्टार्कटिक को छोड़कर, सभी महाद्वीपों (अफ्रीका, यूरोप, एशिया, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका) में पाये जाते हैं, जैसेः

(i) **उत्तरी–नदी ऊदबिलाव *(लोन्ट्रा केनाडेन्सिस)*** : 1 मी0, 5–15 कि0ग्रा0 उत्तरी अमेरिका का बहुत सक्रिय व आकर्षक ऊदबिलाव है जो वहाँ के चिड़ियाघरों व जलकुपडों (AQUARIUM) का अधिक प्रचलित जीव है।

(ii) **दक्षिण–नदी ऊदबिलाव *(लो0 प्रोवोकैक्स)*** : चिली व अर्जेन्टाईना (दक्षिण अमेरिका) स्वच्छ जलीय व समुद्री, दोनों प्रकार के पर्यावरण में पाया जाता हैं

(iii) **नियोट्रॉपिकल – नदी ऊदबिलाव *(लो0 लौंगीकौडिस)*** : मध्य व दक्षिणी अमेरिका की तीव्र बहाव वाली नदियों में पाया जाता हैं

(iv) **समुद्र–जलीय (MARINE) ऊदबिलाव *(लो0 फेलिना)*** : दक्षिणी अमेरिका का एकमात्र समुद्र–जलीय ऊदबिलाव। परन्तु ये 30 मी0 तक स्वच्छ जल अथवा खाड़ी – जल में भी प्रवेश कर जाते हैं।

(v) **समुद्री (SEA) ऊदबिलाव *(ऐनहाईड्रा लूट्रिस)*** (चित्र–9) : पूर्णतः समुद्र वासी यह ऊदबिलाव उत्तरी अमेरिका (अलास्का व कैलीफोर्निया) के प्रशाँत महासागरीय तटों (1 कि0मी0 दूर 15–25 मी0 गहराई तक) व रूस के तटों पर वास करता है।

(vi) **छोटे पंजे वाले एशियन ऊदबिलाव *(एओनिक्स सीनेरियस)*** (चित्र–10) : विश्व का यह सबसे छोटा (90 से0मी0, 5.0 कि0ग्रा0) ऊदबिलाव बांग्लादेश, दक्षिण भारत, चीन, ताईवान, इण्डोचीन, मलेशिया प्रायद्वीप, इण्डोनेशिया व फिलिपीन के मैंग्रूव दलदली क्षेत्र व स्वच्छ जलीय स्रोतों में पाये जाते हैं।

(vii) **पंजेविहीन (CLAWLESS) अफ्रीकी ऊदबिलाव *(ऐओ0 केपेन्सिस)*** : सवानाह व समतल नीची भूमि वाले जंगलों के स्थाई स्वच्छ जलीय स्रोतों में वास करने वाले ये ऊदबिलाव दूसरे सबसे बड़े स्वच्छजलीय ऊदबिलाव हैं जिनके पैर आंशिक जाली वाले व पंजेविहीन होते हैं।

(viii) **कोंगो के पंजेविहीन ऊदबिलाव *(एओ0 कोंगोइकस)*** : अफ्रीका कोंगो, अंगोला, कैमेरून, मध्य अफ्रीकी गणराज्य, रवाँडा, बुरून्डी व युगाँडा के ये ऊदबिलाव, अफ्रीकी पंजेविहीन ऊदबिलाव जैसे ही होते हैं परन्तु इनके आगे के पैर जाली (WEB) व पंजेरहित होते हैं।

(ix) **यूरोपियन ऊदबिलाव *(लूटरा लूटरा)*** : यूरेशियन नदी ऊदबिलाव, सामान्य ऊदबिलाव तथा पुरानी दुनिया (OLD WORLD) के ऊदबिलाव नाम से भी जाना जाने वाला यह 'ऑटर' यूरोप का प्रारूपिक स्वच्छ–जलीय ऊदबिलाव है। क्योंकि यह एशिया व अफ्रीका के कुछ भागों का भी प्रतिनीधित्व करता है, इसीलिए इसे 'ओल्ड वर्लड ऑटर' कहते हैं।

(x) **रोंयेदार नाक (HAIRY-NOSED) वाला ऊदबिलाव *(ल0 सुमात्राना)*** : जावा, बोर्नियो, सुमात्रा, मलेशिया, कम्बोडिया, थाईलैंड तथा इण्डोनेशिया में पाये जाने वाले इन ऊदबिलाव को 1998 में लुप्त (EXTINCT) मान लिया गया, परन्तु 2006 में इनके एक छोटे से समूह को **'टोलुका झील'** (लोस–ऐंजेलीस; सैन फर्नानडो घाटी, कैलीफोर्निया, उत्तरी अमेरिका!) में पाया गया।

(xi) **चित्तीदार गर्दन वाले ऊदबिलाव *(लू0 मेक्यूलिकोलिस)*** : गले व गर्दन पर पीले रंग की धारियों वाले ये ऊदबिलाव 'सहारा' के दक्षिण में अफ्रीका के 'इथोपिया' से 'केप' प्राँत तक पाये जाते हैं।

(xii) **कोमल आवरण (SMOOTH-COATED) वाले ऊदबिलाव *(लूटरोगेल पर्सपीसिल्लेटा)*** (चित्र–11) : पूर्वी भारत से दक्षिण–पूर्व एशिया तक पाये जाने वाले ये ऊदबिलाव (59–64 से0मी0, 7–11 कि0ग्रा0) दलदली जंगलों, घने जंगलों वाली नदियों, झीलों व चावल उत्पादन–क्षेत्रों में रहना पसंद करते हैं। जैसा कि नाम से स्पष्ट है इनकी रोंयेदार खाल कोमल और रोंये छोटे होते हैं।

(xiii) **भीमकाय (GIANT) ऊदबिलाव *(टेरोन्यूरा ब्राजीलिएन्सिस)*** 1.8 मी0 लम्बाई व 34 कि0ग्रा0 भार वाला यह 'ऑटर' दक्षिणी अमेरिका के आमेज़न नदी क्षेत्र में वास करता है।

सभी ऊदबिलाव लम्बे, छरहरे, अधिक लचीले शरीर व छोटे, जालीयुक्त (जैसे बत्तख में) पैर वाले होते हैं। शिकार पकड़ने के लिए अधिकाँश के पैरों में धार–दार नुकीले पंजे होते हैं। ये अच्छे तैराक हैं और समुद्री 'ऑटर' विशेषतः पिछले पैरों व पूँछ की सहायता से तैरते हैं। स्वच्छ जलीय 'ऑटर' चारों पैरों की सहायता से धीमी गति से तैरते या उतराते हैं। समुद्री ऊदबिलाव (SEA OTTER) अपना अधिकाँश समय पीठ के बल सतह पर तैरते/उतराते (FLOATING) हुए ही व्यतीत करते है (चित्र–9); जल की सतह पर इनकी गति 1.5 कि0मी0/घंटा व जल के भीतर 9.0 किमी/घंटा होती है। भीमकाय (GIANT) ऑटर की गति 14.5 किमी/घंटा होती है। समुद्री 'ऑटर' 97 मी0 गहराई तक डुबकी लगा सकते हैं और 52–92 सेकण्ड तक (अधिकतम 4 मिनट) डूबे रहते हैं। नदी वाले 'ऑटर' 6–8 मिनट तक जल के भीतर तो रह ही सकते हैं वरन् धरती पर 47 कि0मी0/घंटा की दर से दौड़ भी सकते हैं।

'ऑटर' का सबसे महत्वपूर्ण गुण उनके शरीर पर उपास्थित रोमों (बालों) की घनी पर्त है। 1000 रोम/वर्ग मी0मी0 (1000 HAIRS/MM^2) वाली कोमल रोमों की नीचे वाली घनी पर्त को लम्बे बालों की ऊपरी पर्त न केवल सुरक्षित रखती है बल्कि जल में उन्हें सूखा बनाये रखती है और वायु की पर्त को रोककर शरीर को गर्म भी रखती है। त्वचा पर उपस्थित तैल ग्रंथियों से **'स्क्वैलीन'** नामक पदार्थ जल रोधक का कार्य करता है।

अधिकाँश ऊदबिलाव का प्रिय भोजन मछली हैं परन्तु मेढ़क, झींगा, केकड़े व सीपियाँ, छोटे स्तनधारी व पक्षी भी इनका भोजन हैं। समुद्री 'ऑटर' तो अपने अगले पैरों से पत्थरों को उलट–पलट कर उसके नीचे से सीपी या घोंघे निकाल लेते हैं। यह केवल ऐसा समुद्री जीव है जो दाँतो के बजाय अपने हाथों से मछली को पकड़ लेता है समुद्री ऊदबिलाव के अगले पैरों के नीचे, छाती से होते हुए एक ओर से दूसरी ओर तक त्वचा का ऐसा ढीला थैला (POUCH) होता है जिसमें वह एकत्र किया हुआ भोजन संचित करते रहते हैं (विशेषकर बाँई ओर की थैली में)। विचित्र तथ्य यह है कि उस थैली में वे पत्थर को भी रखते हैं, जिसका उपयोग वे कठोर कवच वाली सीपियों को तोड़ने के लिए करते हैं। सतह पर पीठ के बल तैरते हुए ये पत्थर को छाती पर रखते हैं और फिर सीपियों को उस पत्थर पर मार–मार कर तोड़ते हैं और उसके अन्दर का कोमल माँस खा जाते हैं। वयस्क के 32 दाँत, विशेषतः दाढ़े (MOLAR) भोजन को तोड़ने व चबाने के लिए चपटी व गोलाकर सतह वाले होते हैं। सीपियों के माँस को कवच से बाहर निकालने के लिए ये अपने नीचे के 2 जोड़ी छेदक दंतो (INCISOR TEETH) का उपयोग करते हैं। कुछ अन्य प्रकार की सीपियाँ (ABALONE) चट्टान पर इतनी मज़बूती से चिपकी रहती हैं कि उन्हें उखाड़ने के लिए ये 'ऑटर' बड़े–बड़े पत्थरों से हथौड़े के समान प्रहार करते हैं। इनकी पाचन्शक्ति/प्रभावितृ 80–85% होती है और लगभग 3 घंटे में भोजन को पचाकर मलत्याग भी कर देते हैं। भोजन की जारण दर (METABOLIC RATE) किसी भी थलीय स्तनधारी की तुलना में 2 से 3 गुना अधिक होती है अतः इन्हें अपने शरीर के भार का 15%–35% भोजन अधिक खाना पड़ता है तभी ठंडे वातावरण में रहकर ये उष्मा की कमी की भरपाई कर पाते हैं। 20–28 वर्ष जीवन काल वाले समुद्री ऑटर में 6–8 माह का गर्भकाल होता है और ये सामान्यतः 1 शिशु को (समुद्री ऑटर द्वारा कभी–कभी जुड़वा) जन्म देते हैं। कोमल रोमो वाले एशियन ऑटर का गर्भकाल 60–63 दिन का होता है और ये अक्टूबर–फरवरी के मध्य 5–7 शिशुओं

को जन्म देते हैं।

तीव्र गंध वाली गंध ग्रंथि के कारण बहुत से शिकारी इनका शिकार करने से कतराते हैं परन्तु फिर भी किलर व्हेल, सी–लायन, बाज़ आदि इनका (विशेषतः शिशु) शिकार करते हैं। थल पर ये भालू व भेड़ियों का शिकार बनते हैं।

मनुष्य ने 18 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से इनका बहुमूल्य रोंये दार, कोमल खालों के लिए व्यापक शिकार किया। रूस व उत्तरी अमेरिका के निवासियों ने तो ऊँचे दामों पर बिकने वाली खाल को **'कोमल/नर्म सोना'** (SOFT GOLD) जैसी संज्ञा दे दी थी। 'ऑटर' की रोंयेदार खाल से बने वस्त्रों का इतिहास बहुत पुराना है। चीन में तो ऐसा वस्त्रों को पहनना राजसी ठाठ माना जाता रहा है। इनकी पूँछो से 'बैल्ट' तथा 'हैट' बनाये जाते थे।

'ऑटर' का मछली पकड़ने में उपयोग

परम्परागत स्तर पर मछली पकड़ने का काम बांग्लादेश में 200 वर्षों से भी अधिक समय से हो रहा है। सुन्दरबन से सटे नोरेल तथा खुलना ज़िलों में 'कोमल रोंयेंदार खाल वाले ऊदबिलाव' (चित्र–10) को पाला जाता है और मछली पकड़ने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। पूरी प्रक्रिया बड़ी रोचक है जिसमें 3 व्यक्ति, 1 नाव, 1 जाल 2 वयस्क प्रशिक्षित तथा 1 अपरिपक्व प्रशिक्षणार्थी ऊदबिलाव प्रयुक्त होते हैं। मछली पकड़ने का कार्य रात्रि में होता है। रस्सी से बंधे ऊदबिलावों को नदी में छोड़ दिया जाता है। अब वे नाव से दूर लगाये गये जाल की ओर मछलियों को खदेड़ते हैं और जब वे जाल के समीप पहुँचती हैं तो जाल को नाव पर खींच लिया जाता है। 4 से 12 कि0ग्र0 मछली एक रात में पकड़कर, 1 माह में औसतन 15,000 रू0 तक की आमदनी इस परम्परागत मत्स्य– आखेट से हो जाती है।

'ऑटर' व धर्म एवं संस्कृति

- अमेरिकन संस्कृति में इन्हें स्थानीय जन जाति के आध्यात्मिक प्रतीक माना जाता है।
- कोरिया की एक पौराणिक कथा के अनुसार यदि कोई व्यक्ति एक 'ऑटर' देख लेता है तो वह 'बरसने वाले बादलों' को आकर्षित कर लेगा।
- जापानी दंतकथाओं के अनुसार 'ऑटर' (कावाऊसो) लोमड़ी के समान मनुष्य को बेवकूफ बनाते हैं। कई कथाओं के अनुसार वे सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर लेते हैं और यदि कोई मानव उनके महल में प्रवेश करता है तो वे उसे मारकर खा जाएँगी।
- रूस के निवासी 'आईनू' इन्हें मानव व रचयिता के बीच एक संदेशवाहक मानते हैं।

4. हिप्पोपोटेमस अथवा दरयायी घोड़ा *(हिप्पोपोटेमस एम्फीबियस)* (चित्र–12) : गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि जैसे 2 खुर वाले शाकाहारी स्तनधारियों के समूह में सम्मिलित, हाथी व गैंडो के बाद तीसरे सबसे बड़े (4.0 मी0, नर 1,500 कि0ग्रा0, मादा 1300 कि0ग्र0) ये स्तनधारी अफ्रीका (कौंगो, युगाँडा, तेनज़ानिया, इथोपिया, सोमालिया, सूडान, गैम्बिया व दक्षिण अफ्रीका) के घास के मैदानों व धने जंगलों में पाये जाते हैं। उभमचर जीवन व्यतीत करने के लिए ये स्तनधारी नदी, झील, मैंग्रूव दलदली क्षेत्रों में रहते हैं। दिन के समय शरीर को ठंडा रखने के लिए ये जल अथवा कीचड़ में ही रहते हैं परन्तु गोधूली के समय ये धरती पर आकर 10 कि0मी0 से भी अधिक दूरी की यात्रा करते हैं और अपने प्रिय भोजन घास का भक्षण करते हैं। एक रात्रि में 4–5 घंटे घास चरने पर ये लगभग 70–कि0ग्रा0 घास चट कर जाते हैं। जन्म के समय 'हिप्पो' की आँतों में घास को पचाने के लिए विशिष्ट बैक्टीरिया (जीवाणु) नहीं होते, जिन्हें वे अपनी माँ के मल को खाकर प्राप्त करते हैं। असामान्य व्यवहार का प्रदर्शन करते हुए इन्हें सड़े–गले माँस को अथवा अपने ही समूह के सदस्यों को खाते (CANNIBALISM) हुए देखा गया है।

ड्रम जैसे उदर, बड़े मुख व दाँत, बाल–रहित खाल, खम्बे जैसे पैर वाले शरीर पर आँखे, कान व नासा–छिद्र खोपड़ी पर काफी ऊँचाई पर स्थित होते हैं और जल में शरीर डूबे रहने पर ये सतह से बाहर रहते हैं। पंजो में जाली (WEBBED-FEET) होने पर भी ये अच्छे तैराक नहीं है। इनके शरीर का घनत्व (विशेष कंकालीय गुण के कारण) ऐसा होता है जो इन्हें जल में डूबने व नदी तल पर चलने में सहायक होता है। जल में ये 8 कि0मी0 प्रति घंटा की दर से चल सकते हैं और प्रत्येक 3–5 मिनट में साँस लेने के लिए सतह पर आते रहते हैं। जल में डूब जाने पर विशेष कपाटों द्वारा इनके नासा छिद्र बंद हो जाते हैं। धरती पर ये छोटे–छोटे डग भरते हुए 30 कि0मी0 प्रति घंटा की दर से चल सकते हैं।

खोपड़ी की संरचना व भौगोलिक वितरण में भिन्नता के कारण इनकी 5 उपजातियों की पहचान की गई है। सभी में विशेषता यह है कि इनके जबड़ों की संधि खोपड़ी पर काफी पीछे इस प्रकार स्थित होती है कि जब ये अपना मुँह खोलते हैं तो मुँह लगभग 180° तक खुल जाता है। मुँह खोलते व बंद करते समय जब दाँत आपस में टकराते हैं तो वे और तेज़ व धारदार होते रहते हैं।

नीचे के जबड़े के नुकीले 'कैनाईन' (50 से0मी0) व 'इन्सीज़र' (40 से0मी0) नरों में काफी बड़े होते हैं व निरंतर वृद्धि करते रहते हैं। इन दाँतों का उपयोग आक्रामकता दर्शाने व आक्रमण करने मे ही होता है। भोजन (घास) उखाड़ने में चौड़े व कठोर होंठो का व पीसने में दाढ़ों का उपयोग होता है।

15 से0मी0 मोटी त्वचा (खाल) पर बाल न के बराबर ही होते हैं। त्वचा के नीचे की चर्बी की पर्त पतली होती है। दरयायी घोड़ों के ऊपरी भाग बैंगनी–सलेटी से नीले–काले व नीचे के तथा आँख व कान के चारों ओर के भाग भूरे–गुलाबी होते हैं। इनकी त्वचा से लाल रंग की **'सूर्य से सुरक्षित करने वाली प्राकृतिक पर्त'**

(NATURAL SUNSCREEN) स्रावित होती है। यह स्राव मूलतः रंगहीन होता है परन्तु जैसे ही यह बाहर आता है तो कुछ ही समय में लाल–नारंगी व अंततः भूरा हो जाता है। इस स्राव में उपस्थित रंजक (PIGMENTS) अत्यधिक अम्लीय होते हैं जो न केवल हानिकारक जीवाणुओं की वृद्धि रोकते हैं बल्कि पराबैंगनी (ULTRAVIOLET) किरणों को सोखकर **'सनस्क्रीन' (SUNSCREEN)** का प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

40–50 वर्ष तक के जीवन काल वाले इन 'हिप्पो' के नर 7.5 वर्ष व मादाएँ 5–6 वर्ष की आयु में परिपक्व होती हैं। संभोग जल के भीतर होता है और ग्रीष्म ऋतु के अंत में बरसाती मौसम में चर्म–सीमा गर्भाधान व शरद ऋतु के आरम्भिक नम मौसम में सर्वाधिक जन्म होते हैं। नर के शुक्राण वर्ष भर सक्रिय रहते हैं। एक बार गर्भवती होने पर अगले 17 माह तक मादा में अण्डोत्सर्ग (OVULATION) नहीं होता। गर्भकाल 8 माह का होता है। बच्चों (बछड़े) का जन्म जल के भीतर ही होता है। जब जल गहरा होता है तो ये बछड़े (1.27 मी0, 25–50 कि0ग्रा0) माँ की पीठ पर सुरक्षा पाते हैं और पिछले पैरो के बीच स्थित दो थनों (स्तनग्रंथि) से दूध पीने के लिए जल में उतर जाते हैं। जनम के 6–8 माह बाद दूध पीना छुड़ा दिया (WEANING) जाता है।

नर व मादाओं को बाहर से पहचाना नहीं जा सकता। ये सामाजिक प्राणी बिल्कुल नहीं हैं परन्तु माँ व बेटी में कुछ सामाजिक बन्धन बनते प्रतीत हुए हैं। ये दरयायी घोड़ें केवल जल में ही सीमा–रक्षक (TERRITORIAL) होते हैं, जहाँ एक परिपक्व नर (साँड अथवा BULL) 10 मादाओं के निवास करने वाले 250 मी0 नदी के क्षेत्र पर आधिपत्य रखता हैं। सबसे बड़े झुंड ('POD') में 100 से अधिक 'हिप्पो' हो सकते है। सींमाँकन केवल प्रजनन अधिकार प्राप्त करने के लिए होता है। एक 'झुंड' (POD) में युवा, युवाओं के साथ; मादाएँ, मादाओं के साथ व साँड (BULL) अपने समूह के साथ रहते हैं।

'हिप्पो' बहुत ही आक्रामक होते हैं और अपने ही समूह के अन्य परिपक्व नरों अथ्वा मादाओं पर आक्रमण करते हैं। नील नदी के पास जहाँ शेरों व मगरमच्छों के समूह होते हैं वे वयस्को का शिकार करते देखे गये हैं। दूसरी ओर मगरमच्छ भी 'हिप्पो' के आक्रामक स्वभाव का केन्द्र होते हैं, या तो उन्हें वहाँ से भगा दिया जाता है या मार दिया जाता है। मनुष्य पर भी इनके आक्रमण (जब ये नौकाओं में या थल पर होते हैं) कम नहीं होते।

मनुष्य व 'हिप्पो' के पारस्परिक सम्बंध के प्रमाण हड्डियों के रूप में लगभग 1,60,000 वर्ष पूर्व (इथोपिया से) के मिलते हैं। 'हिप्पो' का शिकार करते दिखाते हुए भित्ति चित्र मध्य सहारा की चट्टानों पर प्राप्त हुए हैं जो 4,000–5,000 वर्ष पुराने हैं। पुरातन इजिप्ट (मिश्र) निवासी 'हिप्पो' को नील नदी का सबसे भयानक जन्तु मानते थे।

25 मई, 1850 को सबसे पहला 'हिप्पो' लंदन के चिड़ियाघर में रखा गया था। अफ्रीका की बहुत सी लोक कथाओं में 'हिप्पो' का उल्लेख हुआ है। एक प्रचलित कथा के अनुसार जब सृष्टि रचयिता प्रत्येक जन्तु को उसका आवास आबंटित कर रहे थे तो 'हिप्पो' ने जल में रहने की इच्छ व्यक्त की परन्तु इस भय से उसे मना कर दिया गया कि वह तो वहाँ की सब मछली खा जायेगा। 'हिप्पो' ने काफी प्रार्थना की और अंततः उसे इस शर्त के साथ जल में रहने की अनुमति मिल गई कि वह मछली न खाकर घास खायेगा और अपने मल (गोबर) को इस प्रकार फेंकेगा कि उसमें मछली की हड्डियों का परीक्षण किया जा सके! एक अन्य कहानी के अनुसार 'हिप्पो' के शरीर पर लम्बे सुन्दर बाल थे, परन्तु एक ईष्यालु खरगोश ने उनमें आग लगा दी और इस कारण उसे समीप के जलाशय में कूद जाना पड़ा। क्योंकि 'हिप्पो' के सब बाल जल गये थे तो उसे जलाशय से बाहर आने में बहुत शर्म आती थी! कार्टून कलाकारों में भी 'हिप्पो' का उपयोग एक हंसोड़ पात्र के रूप में किया गया है।

(अगले अंक में 'पूर्ण जलीय स्तनधारियों' पर चर्चा होगी।)

अवकाश प्राप्त एसो0 प्रो0
जन्तु विज्ञान विभाग,
डी0बी0एस0 महाविद्यालय, देहरादून

परितंत्र की कहानी–16

उजड़ गया तालाब

दिनेश चन्द्र शर्मा

प्रवासी पक्षियों के उजड़े हुये आवास क्षेत्र के विषय में जानकर हिरण और उसका शावक बहुत दुःखी हुये। कुछ देर मौन रहकर शावक बोला, "मोर दादा, मानव तालाबों को उजाड़ने से भी बाज नहीं आ रहा है।" मोर बोला, "हाँ बेटा, मानव तालाबों को भी बुरी तरह उजाड़ रहा है। लो मैं तुम्हें एक और तालाब के उजड़ने की कहानी सुनाता हूँ, ध्यान से सुनो।" हिरण और उसका शावक सजग होकर सुनने लगे। मोर ने कहानी सुनानी आरंभ की।

"एक स्थान पर खेतों के बीच में एक सुन्दर सा तालाब था। उसमें निर्मल जल था। एकदम पारदर्शी पानी। तालाब में किनारे के पेड़–पौधों व घास फूस, आकाश, बादल व उड़ते हुये पक्षियों का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी पड़ता था। पानी के भीतर और बाहर विविध तरह की वनस्पतियां थी। वहाँ नाना प्रकार के जीव आनंद पूर्वक रहते थे। कुछ पानी में डुबकियां लगाते और तैरते थे, तो कुछ धरती पर फुदकते

दौड़ते या रेंगते थे और कुछ धरती और पानी दोनों में रहते थे। कुछ मिट्टी में छिपकर रहते थे तो कुछ कीचड़ में ही अपना जीवन चक्र पूरा करते थे। कुछ जीव पानी के भीतर या बाहर की वनस्पतियों से अपना भोजन प्राप्त करते थे तो कुछ जीव दूसरे जीवों का शिकार करते थे। सब कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार था–बड़ा व्यवस्थित और सन्तुलित। इन्हीं कारणों से तालाब का वातावरण बड़ा ही मनोरम था।

एक दिन तालाब के किनारे के खेत में किसान कुछ छिड़क रहा था। तालाब के जीवों ने उस ओर कोई ध्यान न दिया क्योंकि किसान तो अपने खेत में प्रतिदिन कुछ न कुछ करता ही रहता था। शाम को दोपहर बाद बगुले उस खेत में कीड़े चुगने गये तो उन्होंने पाया कि खेत के सारे कीड़े मर चुके थे। बगुलों ने तालाब पर आकर अन्य जीवों को यह सूचना दी तो सभी जीवों में खलबली मच गयी। उस खेत से तो बहुत सारे जीव जन्तुओं को अपना आहार प्राप्त होता था। रात को बरसात हुई और खेत से पानी बहकर तालाब में आया तो उस किनारे के बहुत सारे कीट मेढ़क और मछलियां मर गये। अब तो तालाब के जीवों की चिंता और भी बढ़ गयी थी।

एक दिन तालाब के दूसरे किनारे वाले खेत में भी किसान फिर उसी तरह कुछ छिड़क रहा था। सारे जीव व्याकुल हो उठे। वे इकट्ठे होकर किसान के पास पहुँचे। बगुले ने कहा, "किसान भइया, आप यह क्या छिड़क रहे हैं?"

किसान ने कहा, "मैं अपनी फसल को कीटों से बचाने के लिये कीटनाशक का छिड़काव कर रहा हूँ। इससे फसलों को हानि पहुँचाने वाले कीट मर जायेंगे और खेत में खूब पैदावार होगी।"

"लेकिन भइया, ऐसे कीटो को तो हम ही खा लेते हैं, फिर कीटनाशक छिड़कने की क्या आवश्यकता है?" बगुले ने फिर पूछा

"तुम लोग तो धीमी गति से कीटों को खाते हो तब तक मेरी फसल को थोड़ा–बहुत नुकसान तो हो ही जाता है। मैं जरा भी नुकसान होने देना नहीं चाहता।" किसान ने अपनी समस्या बतलायी।

मेंढक ने टर्र–टर्र करके कहा, "लेकिन भइया, कीटनाशक छिड़कने से तो ऐसे भी–बहुत सारे कीट मर जायेंगे जिनकी कोई गलती नहीं है। तालाब का पानी भी जहरीला हो रहा है। मिट्टी, कीचड़ और पानी में रहने वाले अनेक जीवों पर भी दुष्प्रभाव पड़ रहा है। बड़े जीवों को अपना आहार खोजने में भी परेशानी हो रही है।"

किसान ने लापरवाही से कहा, "इन सब बातों की चिंता मैं क्यों करूं?"

"अरे भइया, कैसी बातें करते हो! जरा गंभीरता से सोचो, तुम्हारी इस गतिविधि से ऐसे जीव भी तो मर रहे हैं जो तुम्हारे दोस्त हैं और दिन–रात तुम्हारे हित में जुटे रहते हैं।" मेंढक ने समझाया।

किसान ने मुँह बिचकाते हुये कहा, "हूँ.... भला ये छोटे–छोटे जीव मेरा क्या हित कर सकते है। तुम लोग मुझे भ्रमित मत करो। मेरा बहुत बड़ा परिवार है, परिवार के सदस्यों का पेट भरने के लिये मुझे बहुत सारा अनाज चाहिये। इसलिये मुझे अपने खेतों की पैदावार तो बढ़ानी ही होगी। इस मामले में जरा भी ढील देकर मैं कोई जोखिम नहीं उठा सकता। फिर अब तो वह समय आ गया है कि खेतों में कीटनाशकों के उपयोग के बिना पैदावार हो ही नहीं सकती। आप लोग यहाँ से चले जाओ और मुझे अपना काम करने दो।"

सभी जीवों ने किसान को समझाने का बहुत प्रयास किया लेकिन वह अपनी जिद पर अड़ा रहा। जीव निराश हो गये। बगुले ने किसान को चेतावनी देते हुये कहा," देख लेना किसान, यदि तुमने अपनी ऐसी गतिविधियाँ नहीं रोकीं तो एक दिन तुम बहुत पछताओगे।" लेकिन किसान पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। सारे जीव वापस लौट आये। तालाब के किनारे के खेतों में रासायनिक उर्वरकों का धुँआधार उपयोग होने लगा। तालाब के और भी दुर्दिन आये। पास की बस्ती का गंदा नाला भी तालाब में डाल दिया गया। कुछ दिनों बाद वहाँ एक कारखाना लगाया गया तो इसका दूषित उत्प्रवाह भी तालाब में ही बहाया जाने लगा। कुछ सक्षम जीव–जन्तु वहाँ से पलायन करने लगे। कितने ही जीव रोगी हो गये और दम तोड़ने लगे। वनस्पतियां उजड़ने लगीं। तालाब की सुन्दरता पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी। मिट्टी को उर्वरा बनाने वाले जीव भी नष्ट हो चुके थे। परिणामतः, किसान अपने खेतों में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग की मात्रा बढ़ाते जा रहे थे। कुछ ही दिनों में खेत बंजर बनने लगे और तालाब हो गया एकदम उजाड़ और वीरान।

राज्य आकदमिक कन्विनर
राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस
उत्तर प्रदेश

भारतीय विज्ञान लेखक संघ, उत्तराखण्ड प्रभाग द्वारा आयोजित संगोष्ठी

भारतीय विज्ञान लेखक संघ, उत्तराखण्ड प्रभाग की एक संगोष्ठी दिनांक 24 अप्रैल, 2014 को दयानन्द ब्रजेन्द्र स्वरूप महाविद्यालय के स्वर्णजयंती सभागार में आयोजित की गई। संगोष्ठी को विज्ञान लेखक संघ के मूल संस्थापक, 'नेचर' पत्रिका के भारतीय विज्ञान संवाददाता, प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया के विज्ञान सम्पादक तथा परमाणु वैज्ञानिक डॉ. के. एस. जयरामन् ने संबोधित किया। डॉ0 जयरामन् ने बताया कि भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान तो हो रहा है लेकिन उसकी जानकारी जनसामान्य को देने की परम्परा का वैसा विकास यहाँ नहीं हुआ है जैसा अमेरिका या यूरोप के देशों में पाया जाता है। भारत के अनेक समाचार पत्र भी विज्ञान विषयों को उतना महत्त्व नहीं देते जितना राजनीति, खेल या सिनेमा को देते हैं। यद्यपि अब स्थिति में परिवर्तन हो रहा है परन्तु अधिक से अधिक पत्रकारों को विज्ञान लेखक बनना चाहिये और अधिक से अधिक वैज्ञानिकों को लोकप्रिय विज्ञान लेखक बनना चाहिये। विज्ञान लेखक संघ जैसी संस्थाएँ देश में वैज्ञानिकों तथा जनसामान्य के बीच सेतु का कार्य कर रही हैं। आज सभी पत्र पत्रिकाओं का दायित्व है कि समाज के सामने आने वाली विविध समस्याओं के वैज्ञानिक पहलुओं को जनता के सामने प्रस्तुत करें। उनका यह भी कर्तव्य है कि विज्ञान अनुसंधान पर जो धन व्यय हो रहा है उसके सदुपयोग पर भी ध्यान दें। कार्यक्रम में डी.बी.एस. महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ0 ओ.पी. कुलश्रेष्ठ, डॉ0 जी.के. गुप्ता, डॉ0 एस.के. गुप्ता, डॉ0 एस.एफ. हसन, श्रीमती कमला पंत, डॉ0 संतोष अग्रवाल, श्री राजेन्द्र पाल, डॉ0 श्री राम वर्मा आदि उपस्थित थे। एम.एन. जोशी ने संचालन किया। संगोष्ठी में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि विश्वविद्यालयों के जनसंचार (मास कम्यूनिकेशन) पाठयक्रमों में विज्ञान पत्रकारिता को एक अलग विषय के रूप में मान्यता दी जाय।

यह प्रस्ताव भी पारित किया गया कि विज्ञान लेखक संघ तथा पीपुल्स एसोसिएशन ऑफ हिल एरिया लांचर्स के द्वारा उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी परिषद् के सहयोग से प्रकाशित विज्ञान पत्रिका 'विज्ञान परिचर्चा' को और अधिक उन्नत बनाया जाय।

अंत मे सचिव डॉ0 एस.के. गुप्ता द्वारा सभी के प्रति आभार प्रदर्शित किया गया।

डॉ0 एस.के. गुप्ता
सचिव

सभी जानते है कि नीबू में विटामिन सी होता है जो स्वास्थ्य के लिये अनेक प्रकार से लाभदायक है। परन्तु बहुधा हम केवल नीबू का रस ही प्रयोग करते हैं। यह बहुत कम लोग जानते हैं कि नीबू का छिलका भी अत्यन्त स्वास्थ्यकारक होता है। छिलके में रस की अपेक्षा पाँच से दस गुना अधिक विटामिन सी होता है। इतना ही नहीं नीबू का छिलका शरीर से सभी प्रकार के अवांछित पदार्थ निकाल देता है। छिलका कैंसर प्रभावित कोशिकाओं को नष्ट करता है। यह कीमोथिरैपी की तुलना में दस हजार गुना प्रभावी होता है और इसका कोई अन्य दुष्परिणाम (साइड इफेक्ट) भी नहीं होता। नीबू का रस तथा छिलका रक्त दाब, मानसिक तनाव तथा तंत्रिका तंत्र से संबंधित व्याधियों के लिये भी अत्यंत लाभकारी होते हैं।

इसके प्रयोग के लिये नीबू को फ्रीजर में 8–10 घंटे तक रख दें तो वह कड़ा हो जाता है। फिर उसे कद्दूकस पर कस लें। इस कसे नीबू को किसी भी खाद्य पदार्थ के साथ मिला कर खाया जा सकता है।

(इंटरनेट से साभार)

विज्ञान के विकास के चिर आकांक्षी चंद्रशेखर वेंकटरामन्

प्रद्युम्न डोभाल

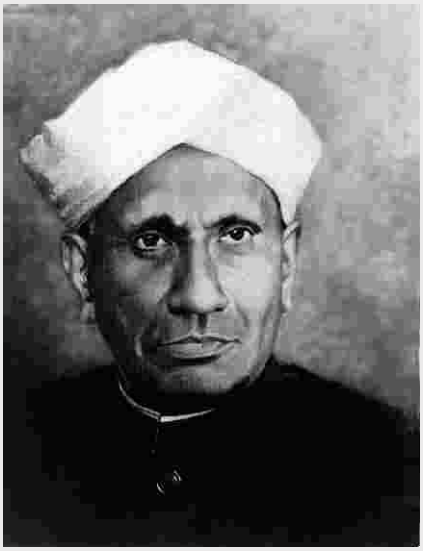

चंद्रशेखर वेंकटरामन् बचपन से ही भारत में विज्ञान की उन्नति एवं तरक्की के पक्षधर रहे। उन्होंने अपना जीवन शोधकार्यों को ही समर्पित किया। इस बात को लिखने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जिन विषयों ने उन्हें विख्यात एवं सुप्रसिद्ध बनाया (भौतिकी और गणित) उसकी मजबूत नींव उनके पिता ने रखी थी।

आम तौर पर जब किसी व्यक्ति की नौकरी लग जाती है, वह उसी में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसकी रुचि धीरे–धीरे उससे अलग होने लग जाती है, लेकिन रामन् उन कम व्यक्तियों में से थे जिन्होंने अपनी रुचि एवं स्वाभाविक रुझान को बनाए रखा और अपनी व्यस्त जिंदगी में से कुछ समय अपनी रुचि के लिये भी निकाला। वे केवल बीस वर्ष की अल्पायु में भारत सरकार के वित्त विभाग में डिप्टी एकाउंटेंट जनरल के पद पर नियुक्त हो गये थे। किन्तु अपने दफ्तर से वापस लौटकर वह अपनी प्रयोगशाला में जाते और विभिन्न उपकरणों से अपना कार्य करते। रामन् हमेशा से अपनी इच्छा शक्ति पर जोर देते गए और उनकी यही खूबी उन्हें प्रसिद्ध बनाने में शामिल है। उनकी खोजों ने भौतिकी विज्ञान को सम्पन्न किया है। उन्होंने विदेशी वाद्ययंत्रों एवं भारतीय वाद्ययंत्रों पर अध्ययन किया और इस बात को बताने में सक्षम और सफल रहे कि भारतीय वाद्ययंत्र, विदेशी वाद्ययंत्र की तुलना में घटिया नहीं है।

रामन् जब समुद्री यात्रा पर थे, तब उनके मस्तिष्क में दो सवाल हिचकोले खा रहे थे, पहला– ''समुद्र का रंग नीला ही क्यों होता है और ''कुछ और क्यों नहीं''? इन दो सवालों के उत्तर की खोज उन्होंने ''रामन् प्रभाव'' के रूप में की। इसी खोज के कारण उन्होंने विख्यात वैज्ञानिकों के बीच स्थान पाया।

रामन् की दृष्टि में, जब एक वर्णीय प्रकाश की किरण किसी तरल या ठोस पदार्थ से गुजरती है, तो उसके वर्ण में बदलाव नजर आता है। कारण यह होता है कि एक वर्णीय प्रकाश की किरण के फोटॉन जब तरल या ठोस रवों से गुजरते और उनके अणुओं से टकराते हैं, तो इस टकराव की वजह से ऊर्जा के कुछ अंश खो जाते हैं या पा जाते हैं''। दोनों ही स्थितियाँ प्रकाश के वर्ण (रंग) में बदलाव लाती हैं। प्लांक के समीकरण $E = h\nu = hc/\lambda$ के अनुसार दृश्य प्रकाश में लाल वर्ण के प्रकाश की तरंग दैर्घ्य, λ (लैंबडा) सबसे अधिक होने के कारण लाल वर्णीय प्रकाश की ऊर्जा सबसे कम होती है।

रामन् की खोज ने आइंस्टाइन के विचारों का पुख्ता प्रमाण दिया। आइंस्टाइन ने कहा था कि ''प्रकाश के सूक्ष्म कण बुलेट के समान हैं जिन्हें उन्होंने ''फोटॉन'' नाम दिया। रामन् की खोज के कारण पदार्थों के अणुओं एवं परमाणुओं की संरचना का अध्ययन सहज हो गया।

सन् 1930 में रामन् को भौतिकी के लिए नोबेल पुरस्कार मिला। और इस प्रकार वह पहले भारतीय वैज्ञानिक बने जिन्होंने यह पुरस्कार प्राप्त किया। नोबेल पुरस्कार की प्राप्ति के बाद सम्मानों और पुरस्कारों की तो लड़ी लग गई। 1954 में उन्हें भारत रत्न प्रदान किया गया।

रामन् को देखकर बाकी वैज्ञानिकों एवं आम लोगों में भी अच्छा करने की आत्म शक्ति जागी। इतने सारे पुरस्कार पाने के बाद भी रामन् हमेशा जमीन से जुड़े रहे और उनका भारतीय संस्कृति के प्रति लगाव बना रहा। उन्होंने अपना भारतीय पहनावा कभी भी नही छोड़ा। वो शाकाहारी थे और उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय चेतना को जाग्रत किया।

लोगों के बीच अखंडित पहचान बनाने के बावजूद भी वह अपने कठिन समय एवं अपने संघर्ष को कभी नहीं भूले। वे उन परिस्थितियों को नही भूले जब उपकरणों का अभाव हुआ करता था, और उन्होंने इस कमी को पूरा किया ताकि युवा वैज्ञानिकों को इस तरह की कमी का सामना न करना पड़े। उन्होंने एक उन्नत प्रयोगशाला की स्थापना की, जो वैज्ञानिक चेतना को बढ़ावा देती है।

रामन् वैज्ञानिक चेतना और दृष्टि के साक्षात प्रतिमूर्ति थे और उन्होंने हमें हर किसी चीज को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का संदेश दिया। हमारे आसपास बहुत सी चीजें है जो उनको खोज निकालने वालों की तलाश में हैं।

मेरी दृष्टि से रामन् प्रभाव केवल प्रकाश की किरणों तक सीमित न था। उन्होंने अपने चरित्र के प्रकाश की किरणों से इस सोने की चिड़िया को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया। अब मात्र जरूरत है, तो युवा वैज्ञानिकों को इस महान व्यक्तित्व के जीवन से प्रेरणा लेने और वैज्ञानिक समस्याओं तथा रहस्यों को सुलझाने की।

कक्षा– 9
वैल्हम बॉयज स्कूल, देहरादून

विज्ञान वर्ग पहेली 11 का उत्तर

प्र	का	श	सं	श्ले	ष	ण	
क्षे			व				म
प	रा	व	र्त	न		रा	ल
ण		क्ष		व	सा		य
	श्ले		ला	जा	व	र्द	
ऊ	ष्मा		र	त	न		व
त		कां				खो	ल
क	व	च		सं	व	ह	न

विज्ञान वर्ग पहेली – 12

1	2				3	4	
5				6	7		
		8					9
	10					11	
12					13		
14			15				
16					17		

संकेत

बांये से दांये

1. 90^0 का कोण (4)
3. बिगड़ना, रोग आदि (3)
5. घात ^{3} (2)
6. लोहे को सोना बनाने वाला काल्पनिक पत्थर (3)
8. कीचड़ (4)
10. साँप (2)
11. प्रमेय (रेखागणित) (2)
12. गति का बढ़ना (3)
14. गति (2)
15. प्रकाश किरण का लौटना (5)
16. टैंजेंट (4)
17. एक प्राचीन भारतीय गणितज्ञ (3)

ऊपर से नीचे

1. घना (3)
2. वजन की एक भारतीय इकाई जो यदि नौ होती तो राधा नाचती (2)
3. ऊपर से नीचे 1 का विलोम (3)
4. छींक, सहिजन का पेड़, एक घास (2)
6. पेड़, पैरों से पीने वाले (3)
8. शीशा जिसमें प्रतिबिम्ब दिखता है (3)
9. औसत (4)
10. जो वक्र न हो (3)
12. चमड़ी (2)
13. अन्दर की ओर से घूमा या मुड़ा हुआ; उत्तल का विलोम (4)
15. खाई (3)

निवेदन

लेखकों से

विज्ञान परिचर्चा में प्रकाशन हेतु सामग्री भेजते समय निम्न मुद्दों का ध्यान रखें।

1. विज्ञान परिचर्चा एक लोकप्रिय विज्ञान पत्रिका है। अत: इसमें विज्ञानके विविध आयामों से संबंधित परन्तु जन सामान्य के लिये उपयोगी तथा उनकी समझ में आ सकने योग्य ढंग से लिखी सामग्री प्रकाशित होती है।
2. लेख यथासंभव आपके अपने अध्ययन के विषय से ही संबंधित हों। भौतिक विज्ञानी का किसी रोग के उपचार से संबंधित या गणितज्ञ का नीबू के औषधीय उपयोग जैसे विषयों पर लिखे लेख उचित नहीं हैं।
3. आपके लिखे लेख के प्रत्येक तथ्य का सत्यापित होना आवश्यक है। इसलिये सन्दर्भ सूची अवश्य दें। अनेक लेखक सोचते हैं कि यह कोई शोध पत्रिका नहीं है अत: इसमें सन्दर्भ देने की आवश्यकता नहीं। यह सोच गलत है। पत्रिका में प्रकाशित लेख को पढ़ कर कोई पाठक यदि अधिक जानना चाहे तो सन्दर्भ सूची लाभदायक होती है। दूसरे सन्दर्भ देने से आपके कथ्य की विश्वसनीयता भी परखी जा सकती हैं
4. लेख स्पष्ट सुवाच्य ढंग से कागज के एक ही ओर लिखा अथवा यथासंभव टाइप किया हुआ होना चहिये। लेख भेजने से पूर्व एक बार पुन: पढ़ लें। अकसर कई भाषा की, व्याकरण की, मात्रा की या वर्तनी की भूलें रह जाती हैं।
5. गंभीर लेखों के अतिरिक्त विज्ञान कथाएँ, कविताएँ, व्यंगचित्र, चित्र, वैज्ञानिकों के संस्मरण रोचक घटनाएँ, वर्ग पहेली, बुद्धि खाद्य आदि सामग्री का भी स्वागत है।
6. लेखक लेख के साथ अपना पूरा नाम, पता, ई–मेल, फोन नं. आदि अवश्य दें जिससे उनसे आवश्यकतानुसार संपर्क किया जा सके

पाठकों से

1. विज्ञान परिचर्चा के अंकों के संबंध में आपकी प्रतिक्रियाएँ अवश्य भेजें। आपके सुझाव हमारा मार्गदर्शन करेंगे।
2. पत्रिका नि:शुल्क वितरण के लिये है। अत: यदि आप इसे नियमित रूप से प्राप्त करना चाहते हैं तो कार्यालय से संपर्क करें। यदि डाक या कुरियर से मंगाना चाहें तो उसका खर्चा देकर प्राप्त कर सकते हैं।

विज्ञान व्यंग चित्र

अशोक कुमार

विज्ञान परिचर्चा के गत चार वर्षों के अंकों की विषय एवं लेखक अनुक्रमणिका

विज्ञान परिचर्चा का प्रथम अंक (जुलाई-सितंबर, 2010) का विमोचन दि0 10 नवम्बर 2010 को हुआ। तब से अबतक इस पत्रिका के त्रैमासिक अंक नियमित रूप से प्रकाशित हो रहे हैं और इस प्रकार परिचर्चा चार वर्षों की यात्रा पूर्ण कर चुकी है। प्रतिवर्ष इसके चार अंक 1-जुलाई से सितंबर, 2-अक्टूबर-दिसम्बर, 3-जनवरी-मार्च तथा 4-अप्रैल से जून के क्रम से प्रकाशित होते हैं। इस आधार पर प्रस्तुत अनुक्रमणिका में अंकों का क्रम दो अंकों से प्रदर्शित किया गया है जिसमें पहला अंक वर्ष तथा दूसरा अंक का द्योतक है। परिचर्चा से प्रकाशित साहित्य में वैज्ञानिक लेख, विज्ञान चिंतन परक लेख, कथा, कविता, हास्य व्यंग लेख, व्यंग चित्र, विद्यार्थियों के लिये मार्ग दर्शक साहित्य आदि अनेक प्रकार सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त उत्तराखण्ड के विज्ञान ऋषि स्तम्भ में प्रत्येक अंक में उत्तराखण्ड से संबंधित एक ख्यातनाम वैज्ञानिक का परिचय प्रकाशित हो रहा है। उत्तराखण्ड में स्थित किसी वैज्ञानिक संस्थान का परिचय, किसी श्रेष्ठ वैज्ञानिक का परिचय, धारावाहिक परितन्त्र की कहानी में पंचतन्त्र के समान विद्यार्थियों के लिये पर्यावरण के विविध आयामों की जानकारी तथा साथ ही साथ पुस्तक समीक्षा, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी परिषद् की समाचार पत्रिका के माध्यम से प्रदेश मे होने वाली वैज्ञानिक गतिविधियों की जानकारी, पत्रिका की प्रकाशक सस्थाओं पहल तथा भारतीय विज्ञान लेखक संघ, उत्तराखण्ड प्रभाग के विविध उपक्रमों के समाचार आदि भी सम्मिलित रहे हैं।

इस प्रकार हम समझते हैं कि इन 16 अंकों में अब तक काफी ज्ञानवर्द्धक एवं मनोरंजक सामग्री प्रकाशित हो चुकी है। हम अत्यन्त संतोष के साथ इस तथ्य की ओर पाठक समाज का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं कि परिचर्चा के गत 16 अंकों के लिये 100 से अधिक लेखकों का सहयोग हमें प्राप्त हुआ है। हिंदी के इतने विज्ञान लेखक हमारे साथ जुड़े यही हमारे प्रयास की सफलता है। अतः पाठकों की सुविधा के लिये इस सम्पूर्ण साहित्य की विषयानुसार तथा लेखकानुसार एक अनुक्रमाणिका हम इस 16वें अंक में इस उद्देश्य से प्रकाशित कर रहे हैं कि पाठकों को आवश्यकतानुसार सन्दर्भ प्राप्त करने में सुविधा हो तथा सम्पूर्ण प्रकाशित साहित्य की जानकारी एक स्थान पर हो जाय। हमें विश्वास है कि यह सिंहावलोकन पाठकों को उपयोगी प्रतीत होगा। इस सूची में वर्ग पहेली तथा व्यंग चित्र सम्मिलित नहीं हैं।

उत्तराखण्ड के विज्ञान ऋषि

	विषयानुक्रमाणिका	वर्ष–अंक		विषयानुक्रमाणिका	वर्ष–अंक
1.	आदित्य नारायण पुरोहित	1–1	9.	बोशी सेन	3–1
2.	विक्रम चन्द्र ठाकुर	1–2	10.	श्रीकृष्ण जोशी	3–2
3.	मुकुट बिहारी रायजादा	1–3	11.	मोहन चन्द्र जोशी	3–3
4.	खड्ग सिंह वल्दिया	1–4	12.	यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'	3–4
5.	सुरेन्द्र प्रताप सिंह	2–1	13.	देवीदत्त पन्त	4–1
6.	शरद सिंह नेगी	2–3	14.	सत्येश्वर प्रसाद नौटियाल	4–2
7.	लोकमान सिंह पालनी	2–4	15.	धीरेन्द्र शर्मा	4–3
8.	सतीश चन्द्र दास शाह	2–4	16.	शशिशेखरानन्द गैरौला	4–4

उत्तराखण्ड के विज्ञान संस्थान

1.	भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण	1–1	5.	गोविंद वल्लभ पंत हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान	2–4
2.	वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून	1–2	6.	विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा	3–1
3.	भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, उत्तर क्षेत्रीय परिसर	2–1	7.	मौसम विज्ञान केन्द्र, उत्तराखण्ड	3–3
4.	संग्रहालयः वन अनुंसधान संस्थान	2–2	8.	भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून	4–1

विज्ञान विभूतियाँ

1.	प्रेरणास्रोत महान् गणितज्ञः श्रीनिवास रामानुजन्	2–2	3.	आचार्य सुश्रुत : आधुनिक शल्य चिकित्सा के जनक – पुरुषोत्तम उपाध्याय	3–1
2.	विज्ञान लेखन के प्रकाश स्तम्भः रमेश दत्त शर्मा – अर्चना बहुगुणा	2–3	4.	भारत में आधुनिक रसायन के जन्मदाताः आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र रॉय – रघुनन्दन प्रसाद चमोली	3–3

5. ब्रह्माण्डीय भौतिकी प्रतिभा के धनी वैज्ञानिक : स्टीफन हॉकिंग – काली शंकर 3–4
6. एक विज्ञान लेखक की साधना के 40 साल (श्री शुकदेव प्रसाद) – ललित कोठियाल 3–4
7. संख्याओं की जादूगरनी : शकुंतला देवी – विजय खण्डूरी 3–4
8. सरगेई कोरोलेव : सोवियत अंतरिक्ष कार्यक्रम के पितामह – काली शंकर 4–2
9. प्रो.सी.एन.आर.रावः विज्ञान को समर्पित जीवन – रघुनन्दन प्रसाद चमोली 4–3
10. विज्ञान विकास के चिर आकांक्षी : चन्द्रशेखर वेंकटरामन् – प्रद्युम्न डोभाल 4–4

विज्ञान कथा

1. मातृभूमि का कर्ज – दिनेश चमोला 'शैलेष' 1–3
2. यू.एफ.ओ. – इरफान ह्यूमन 2–1
3. नन्हें अन्तरिक्ष यात्री – विजय चितौरी 3–2
4. रहस्यमय चन्द्रबस्ती – विजय चितौरी 4–2

पुस्तक समीक्षा

1. बच्चों के लिये अंतरिक्ष यात्रा का रोमांच
लेखक – इरफान ह्यूमन
समीक्षक – रूफिया खान 3–3
2. न्यूक्लियर एनर्जी
लेखक – अनुज सिन्हा
समीक्षक – मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी 4–2

श्रद्धांजलि

1. विनोद भाकुनी 1–4
2. हरिश्चन्द्र पाण्डे – नीलम्बर पुनेठा 4–2

सम्मान समाचार

1. संतोष अग्रवाल 1–1
2. आनन्द शर्मा 3–3

विज्ञान कविता

1. सिकता कण हम – मुकुंद जोशी 1–1
2. ग्लोबल वार्मिंग – दिनेश चमोला 'शैलेश' 1–1
3. शिला सागर संवाद – मुकुंद जोशी 1–2
4. पृथ्वी माँ वात्सल्य लुटाती – दिनेश चंद्र शर्मा 1–2
5. नव जंगल लहराएँ – दिनेश चमोला 'शैलेश' 1–3
6. भूजल सूखा जाता है – दिनेश चंद्र शर्मा 1–3
7. जीव जहाँ भी रहते जग में – दिनेश चंद्र शर्मा 1–3
8. घर–घर हम महकाएँ – दिनेश चमोला 'शैलेश' 1–4
9. हिरोशिमा दिवस – राजेन्द्र पाल 2–1
10. बादल – दिनेश चमोला 'शैलेश' 2–1
11. पृथ्वी सभी प्राणियों का घर – दिनेश चंद्र शर्मा 2–2
12. पृथ्वी का इतिहास – मुकुंद जोशी 2–3
13. तारामण्डल – दिनेश चमोला 'शैलेश' 2–4
14. नित्य बचाएँ माँ धरती को – दिनेश चमोला 'शैलेश' 2–4
15. स्पेस शटल युग का अन्त – काली शंकर 3–1
16. ऊर्जा गीत – मुकुंद जोशी 3–2
17. विज्ञान पहेलियाँ – दिनेश चमोला 'शैलेश' 3–3
18. तूफान में – इन्दुभूषण कोचगवे 4–1
19. हे भोलेनाथ! – वीणापाणी जोशी 4–1
20. हिमालय की आपदा – जमुना प्रसाद तिवारी 4–1
21. प्राकृतिक आपदा – दिनेश चमोला 'शैलेश' 4–1
22. भ्रन्त धारणा – मुकुंद जोशी 4–2
23. वैज्ञानिक दान – मुकुंद जोशी 4–2

विद्यार्थियों के लिये

1. विज्ञान के नये आयाम – दीपाली राणा 1–1
2. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइयेः मीन मंथन – राहुल राणा 1–1
3. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइयेः पक्षी परीक्षण – राहुल राणा 1–2
4. विज्ञान के नये आयामः रोजगर के नये अवसर – दिपाली राणा 1–3
5. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइयेः (रसायन एवं वन विज्ञान) – एस.के.गुप्ता 1–3
6. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइयेः कीट वर्ग –एस.के. गुप्ता एवं दीपाली राणा 1–4
7. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइयेः विषैले जन्तु, जन्तु विष – एस.के. गुप्ता एवं दीपाली राणा 2–1
8. स्वरोजगार – मछली पालन उद्योग – एस.के. गुप्ता 2–3
9. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइयेः न उड़ सकने

वाले पक्षी – दीपाली राणा 2–3
10. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइयेः प्रवासी जन्तु – एस.के. गुप्ता 2–4
11. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइयेः जीवाणु एवं विषाणु जनित रोग – एस.के. गुप्ता एवं दीपाली राणा 3–2
12. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइयेः पृथ्वी विज्ञान – मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी 3–4
13. इस वर्ष क्या–क्या खास हुआ विज्ञान में? 4–2
14. गत साढ़े चार सौ वर्षों की चौथाई/अर्ध शती क्रम से विज्ञान संबंधित घटनाएँ – विजय खंडुरी 4–3
15. माध्यमिक कक्षाओं में विज्ञान शिक्षण के कुछ सरल और रोचक प्रयोग – निर्मल रावत 4–3
16. अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइये – उभयचर स्तनधारी – एस. के. गुप्ता

हास्य व्यंग

1. कालका – शिमला रेल मार्ग : राजकीय रिपोर्ट – अशोक कुमार दुबे 1–1
2. सफल कुलपति की खोज – अशोक कुमार दुबे 1–2
3. अंत भला तो सब भला – अशोक कुमार दुबे 1–4
4. पपीता पेड़ से क्यों गिरा – अशोक कुमार दुबे 2–3
5. गुरूजी के नाम एक पत्र – अशोक कुमार दुबे 3–2
6. मिल गया! मिल गया – अशोक कुमार दुबे 4–2
7. फिल्म शोले का रीमेक उर्फ गब्बर शोध संस्थान – अशोक कुमार दुबे 4–3

निबन्ध

1. आज मोरी अटरिया पे कागा बोले – विश्वमोहन तिवारी 1–3
2. मेढ़क तो टर्र–टर्र टर्राते हैं – विश्वमोहन तिवारी 2–1
3. कितनी मुद्राएँ? गणित की उपेक्षा से उपजी एक व्यथा कथा – आइवर यूशिएल 3–1
4. शार्मिंदगी का कारण बनी गणित की उपेक्षा – आइवर यूशिएल 3–4

परितन्त्र की कहानी - दिनेश चन्द्र शर्मा

1. एक था हरियाला वन 1–1
2. मानव ने उजाड़ा हरियाला वन 1–2
3. सिंहों का सफाया 1–3
4. गायब हो गया बाघ 1–4
5. बस्तियों की ओर जाते तेंदुए 2–1
6. हिरणों पर बढ़ते अत्याचार 2–2
7. हाथियों की बुद्धिमानी 2–3
8. हाथियों पर बढ़ते अत्याचार 2–4
9. हाथियों को रौंदती रेलगाड़ियाँ 3–1
10. भटकते गजराज 3–2
11. हिंसा को उकसाता मानव 3–3
12. मोशा को मिला नया जीवन 3–4
13. जोखिम भरी प्रवास यात्राएँ 4–1
14. मुर्गाबी की प्रवास यात्रा 4–2
15. नष्ट हो गये आवासीय क्षेत्र 4–3
16. उजड़ गया तालाब

विज्ञान लेख

अंतरिक्ष विज्ञान

1. खतरनाक आकाशीय पिंड – इरफान ह्यूमन 1–2
2. आओं जानें खगोलीय भाषा – श्रीराम वर्मा 1–2
3. अंतरिक्ष अनुसंधान में भारत के बढ़ते कदम – श्रीराम वर्मा 1–3
4. पृथ्वी समीप पिंडों के संपर्क माध्यम का विशिष्ट मिशन 'न्योवाइज' का समापन – काली शंकर 2–3
5. सौर प्रज्वाल एवं इनके विध्वंसक स्वरूप – काली शंकर 3–3

ऊर्जा विज्ञान

1. आधारभूत आवश्यकताओं में सौर ऊर्जा का योगदान – ईशान पुरोहित एवं गुंजन पुरोहित 4–4

कृषि विज्ञान

1. मशरूम खेती के लाभ – बीना मौर्य 1–2
2. औषधीय गुणों की खान तुलसी की उन्नत खेती – रवीन्द्र कुमार 1–4
3. जैविक खेती : कृषि का नया आयाम – एस.के. तिवारी 2–1
4. समेकित नाशीजीव प्रबंधन – दिनेश मणि 3–1

5. खाद्य पदार्थों का किरणन कितना सुरक्षित? – ईश्वर चन्द्र शुक्ल एवं संजय कुमार 3–2
6. भविष्य हथियारों का नहीं अनाजों का है – दिनेश मणि 3–2
7. जैव उर्वरकों का महत्त्व – दिनेश मणि 3–3
8. मध्य हिमालयी क्षेत्र में मृदा एवं जल संरक्षण हेतु बंजर भूमि उपचार एवं जलागम प्रबन्ध – जी.एस.नेगी तथा पी.पी. ध्यानी 4–1
9. कुट्टू : पर्वतीय क्षेत्रों के लिये उपयुक्त एक गुणकारी पोषक फसल – शैलेश सूद, राजेश खुल्बे, अथीकुल्ला जी.ए., 10. बृजमोहन पांडेय एवं पी.के. अग्रवाल 4–3

गणित

1. भारत में गणित की विकास यात्रा – अवनीश उनियाल 3–1
2. 2012 : राष्ट्रीय गणित वर्ष – विजय खण्डूरी 3–2

चिकित्सा विज्ञान

1. चिकित्सा प्रौद्योगिकी का कृष्ण पक्ष – पुरुषोत्तम उपाध्याय 1–1
2. आर्थराइटिस : रोग और उपचार – मंजुलिका लक्ष्मी 1–4
3. फीजियोथेरेपी – शांभवी हरिदास 1–4
4. जड़ी बूटी तथा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संतुलन – विपिन चन्द्र जोशी 1–4
5. अस्पतालों में अंतरिक्ष तकनीक के उपयोग – कालीशंकर 2–1
6. डोपिंग दंश – खेलों में प्रतिबंधित दवाओं का बढ़ता प्रयोग – दिनेश मणि 2–2
7. सावधान! मधुमेह जानलेवा है – प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव 2–3
8. कैल्शियम लें पर सावधानी के साथ – मंजुलिका लक्ष्मी 3–3
9. महिलाओं में रक्ताल्पता : समस्या और समाधान – प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव 4–4
10. अभी क्षय रोग के साथ संघर्ष जारी है – मंजुलिका लक्ष्मी 4–4

जल विज्ञान

1. पानी : क्या हकीकत, क्या कहानी? – दिव्या डुडेजा 1–4
2. उत्तराखण्ड के जल संसाधन एवं जनसंख्या : एक अवलोकन – भवतोष शर्मा 2–4

जैव प्रौद्योगिकी

1. अपार संभावनाओं वाली प्रौद्योगिकी : जैव प्रौद्योगिकी – प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव 4–2

पर्यावरण विज्ञान

1. पर्यावरण शिक्षा शुरू हो स्कूली पाठ्यक्रमों से ही – रिजवान अहमद 1–1
2. प्राकृतिक आपदाओं के प्रबंधन में सुदूर संवेदन – दिनेश मणि 2–4
3. मानव के क्रिया–कलाप एवं बाढ़ की समस्या – दुर्गापद कुइति 3–1
4. प्राकृतिक आपदाएँ : भ्रांतियाँ एवं तथ्य – मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी 3–1
5. हिमालय की वनस्पतियों पर बढ़ता दबावः शिमला (पश्चिमी हिमालय) एक सन्दर्भ – हर्ष सिंह, वीणा दीक्षित, प्रियंका अग्निहोत्री एवं तारिक हुसेन 3–3
6. घायल हिमालयः मानवी त्रासदी – खड्ग सिंह वल्दिया 4–1
7. उत्तराखण्ड की विभीषिका : वैज्ञानिक अध्ययन – नवनीत कुमार गुप्ता 4–1
8. विपत्तियाँ और आपदा – विजय कुमार गैरोला 4–1
9. अनियन्त्रित जनसंख्या : एक भयानक समस्या – आइवर यूशिएल 4–1
10. उत्तराखण्ड में सुरक्षा के लिये भूस्खलन आपदा से पूर्व बचाव आवश्यक – यू.एस.रावत 4–1
11. भूकम्प सुरक्षा के लिये भूकम्प सुरक्षित भवन निर्माण – पीयूष रौतेला 4–1
12. विज्ञान एवं तकनीकी दृष्टिकोण से उत्तराखण्ड के प्राचीन भवनों की अभियान्त्रिकी – गंगा प्रसाद पंत 4–1
13. उत्तराखण्ड में रेनवाटर हार्वेस्टिंग की संभावनाएँ – भवतोष शर्मा 4–1
14. चलना जीवन का नाम – श्रीराम वर्मा 4–1
15. तृतीय हिम समुद्र हिमालय के लिये वैज्ञानिक भगीरथ चाहिये – धीरेन्द्र शर्मा 4–2
16. काली रातों के जागरण से आनन्द लोक की ओर – चतुर सिंह नेगी 4–2

प्राणी विज्ञान

1. जैव विविधता मूल्यांकन : एक परिदृष्टि – एस.के. गुप्ता 1–1
2. बिना पासपोर्ट के मेहमान – एस. के. गुप्ता 1–2
3. पर्वतीय क्षेत्रों में अंगोरा खरगोश पालन कार्यक्रम से स्वरोजगार को बढ़ावा – कमल बहुगुणा 1–4
4. पशुओं में उरेन विषाक्तता या लहूमूतिया – विकाश चन्द्र 2–1
5. पशुधन विकास में भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक का योगदान – विकाश चन्द्र एवं जी.तरू शर्मा 2–2
6. एक संकटग्रस्त पक्षी प्रजाति : एडबिल नेस्ट स्विफ्टलेट (हवाबील) घोंसले का सूप – एम.विजय एवं बृजेश कुमार 2–3
7. ग्लोबल वार्मिंग का सरीसृपों के लिंग पर प्रभाव – अर्चना बहुगुणा 2–4
8. मानव के परजीवी – विजय कुमार 2–4
9. मच्छर सिकंदर – स्मृति गुप्ता 2–4
10. दूध, दुग्धक्षरण तथा इसकी पौष्टिकता – एन.एन. पण्डिता 3–4
11. सूक्ष्मजीवः एक अद्भुत संसार – कैलाश नारायण भारद्वाज एवं वी.पी.पुरोहित 3–4

भूविज्ञान

1. पत्थर का जन्म प्रमाणपत्र – अजय कुमार बियानी 1–1
2. भारत की धरती की कहानी : मकराना संगमरमर की जबानी – अजय कुमार बियानी 1–2
3. चेतावनी की दस्तकः सुनामी – अजय कुमार बियानी 1–3
4. पृथ्वी एक भमिकाय जीव? – कैलाश नारायण भारद्वाज 4–3

भौतिक विज्ञान

1. विद्युत – चुम्बकीय तरंगों के जैविक प्रभाव – श्रीराम वर्मा 1–1
2. रहस्यमय न्यूट्रिनो – श्रीराम वर्मा 1–4
3. सूक्ष्मकणों नैनो कणों की कहानी – श्रीराम वर्मा 2–1
4. ईश्वरीय कण – महेश कुमार शर्मा 3–1
5. क्वांटम का आविष्कार और क्वांटम की खोज – विश्वमोहन तिवारी 4–1
6. गॉड पार्टिकल–हिग्ज बोसॉन की खोज–श्रीराम वर्मा 4–3

रसायन विज्ञान

1. हरित रसायन : मानव जीवन एवं पर्यावरण सुरक्षा का सशक्त प्रयास – रघुनंदन प्रसाद चमोली 1–2
2. खाद्य मिलावट और उसका सफल परीक्षण – रामचन्द्र मिश्र 1–3
3. गुणों की खान है नमक – डी.डी. ओझा 1–4
4. अनंत संभावनाएँ हैं हरित रसायन में – दिनेश मणि 3–4
5. ऑक्सीकरण – अवकरण तथा बहूपयोगी बैटरीज – गीता जोशी एवं नम्रता घिल्डियाल 4–2
6. नाभिकीय ऊर्जा के अक्षय स्रोत : यूरेनियम और थोरियम – प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव 4–3

वन विज्ञान

1. वानिकी में बीजों का महत्त्व – ओमवीर सिंह 2–3

वनस्पति विज्ञान

1. अब जंगली खर पतवार से प्राप्त सुगन्धित तेल भी बनेंगे आर्थिकी के साधन – आदित्य कुमार 1–1
2. वृक्ष विज्ञान – वीणापाणी जोशी 1–1
3. कुमाऊँ हिमालय का संकटग्रस्त एवं बहुमूल्य औषधीय वृक्ष फरकाट – भावना जोशी पांडे तथा यशवन्त सिंह रावत 2–1
4. धार्मिक, साहित्यिक व औषधीय वृक्षः हारसिंगार – संतोष अग्रवाल 2–2
5. कदली वृक्षः आस्था एवं वैज्ञानिक दृष्टि – जी.सी.पांडे एवं भावना जोशी पांडे 2–3
6. लोक वनस्पति विज्ञान : एक परिदृश्य – अच्युतानन्द शुक्ला एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव 3–2
7. अति उपयोगी वनस्पति सिसुण (बिच्छू घास) – भावना जोशी पांडे 3–2
8. जरबेरा – निशा वर्मा 3–3
9. औषधि गुणों से युक्त वनस्पति श्वेतार्क, मदार अथवा आक – बाबूलाल शर्मा 3–3
10. बहुमूल्य पौधे आर्किड – पल्लवी पाल एवं नीलम नेगी 3–3
11. विभिन्न परिस्थितियों में उगने वाले पौधे – नीलम नेगी एवं पल्लवी पाल 3–4
12. ब्राह्मी (बैकोपा मोमिएरी) : एक परिचय – रेखा त्रिवेदी 4–3
13. एक बहुगुणी पादप : रोजमेरी – ललित कोठियाल 4–4

विज्ञान चिन्तन

1. हमारी संस्कृति की दशा : तकनीक स्वीकार, विज्ञान अस्वीकार – मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी 1–1
2. कैसे बनायें विज्ञान शिक्षण को लोकप्रिय एवं प्रभावी?'– अनंत गंगोला 1–1
3. बाल विकास में सहायक विज्ञान – आइवर यूशिएल 1–2
4. वैज्ञानिक क्षेत्र में महिलाओं का योगदान – प्रीति श्रीवास्तव 1–3
5. वैज्ञानिक दृष्टिकोणः आवश्यकता एवं सार्थकता – कुलदीप गैरोला 1–3
6. 121 करोड़ माने – अजय कुमार बियानी 1–3
7. अल्पदृष्टिवालों के सहायतार्थ प्रौद्योगिकी – विनोद कुमार मिश्र 1–3
8. विज्ञान शिक्षा नीतिः कुछ विचार – विजय कुमार गैरोला 1–4
9. विज्ञान की आवश्यकता और उसका समाज पर प्रभाव – गोपाल कृष्णा शर्मा 1–4
10. शारीरिक समस्याग्रस्त व्यक्तियों के लिये वेब पर अवसर – विनोद कुमार मिश्र 1–4
11. वैज्ञानिक पत्रकारिता की चुनौतियाँ – रश्मि गैरोला 1–4
12. भारतीय दर्शन और विज्ञान – धीरेन्द्र शर्मा 2–2
13. राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस : दो दशक का सफर – अशोक कुमार पंत 2–2
14. सामयिकी : आइने में भारतीय विज्ञान – अजय कुमार बियानी 2–2
15. आइये, विज्ञानी बनें – मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी 2–3
16. 99वीं भारतीय विज्ञान कांग्रेस : अभूतपूर्व विज्ञान महाकुंभ – दिनेश चन्द्र शर्मा 2–3
17. हिंदी में बाल विज्ञान साहित्य : एक दृष्टि – आइवर यूशिएल 2–3
18. आत्मा : एक वैज्ञानिक स्पष्टीकरण – एस.के.गुप्ता 3–1
19. राष्ट्रीय शिक्षक विज्ञान कांग्रेस : एक परिचय – अशोक कुमार पंत 3–3
20. धारणीय विकास में उच्च शिक्षा एवं शोध की भूमिका – भवतोष शर्मा 3–3
21. खोदो, पर खो मत दो – मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी 3–3
22. एक यात्रा प्राकृतिक प्रयोगशाला की – कैलाश कोठारी 3–3
23. हिंदी, युवा पीढ़ी और ज्ञान विज्ञान – दिनेश चमोला 'शैलेश' 3–4
24. कितना महत्त्वपूर्ण है विज्ञान का लोकप्रियकरण? – आइवर यूशिएल 4–2
25. नवीन परिप्रेक्ष्य में विज्ञान शिक्षा – सुनील कुमार गौड़ 4–3

संचार विज्ञान

1. रेडियो संचार प्रणाली – राजेन्द्र पाल 1–1
2. पनडुब्बी को संदेश : बी.एल.एफ. संचार प्रणाली – राजेन्द्र पाल 1–2
3. हैम रेडियो – राजेन्द्र पाल 1–3
4. कर लो दुनिया मुट्ठी में – राजेन्द्र पाल 2–1
5. विद्युत चुंबकीय तरंगों द्वारा संचार माध्यम का प्रदूषण एवं उसके प्रभाव – के.के. झा 2–4
6. मार्गदर्शक जी.पी.एस. – राजेन्द्र पाल 2–4
7. बुलेट ट्रेन – राजेन्द्र पाल 3–3

संस्कृति विज्ञान

1. भारतीय मध्य हिमालय की विलुप्त होती सांस्कृतिक विरासत : कारण एवं समाधान – भावना जोशी पांडे तथा जे.सी. पांडे 2–1
2. स्वास्थ्य एवं लोक कहावतें – रेखा त्रिवेदी 4–4

समुद्र विज्ञान

1. राष्ट्रीय प्रगति में समुद्री अनुसंधान का अवदान – दुर्गादत्त ओझा 4–4

सामान्य विज्ञान

1. विन्ध्य महासंघ की आयु एवं एक वैज्ञानिक का संघर्ष – मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी 1–2
2. दस वैज्ञानिक परीक्षण जिन्होंने विश्व को बदल दिया – काली शंकर 1–3
3. लोकतन्त्र की चमत्कारी मशीन : इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन – नीना गुप्ता 2–2
4. कुछ त्रुटियाँ जो बड़ी वैज्ञानिक खोजों का कारण बनीं – कुलदीप गैरोला 2–3
5. जल, जंगल और जमीन – एस.के. तिवारी 2–4
6. रसोई का विज्ञान – भाग प्रथम – राजेन्द्र पाल 4–2
7. छः बिंदुओं का चमत्कार – इंदुभूषण कोचगवे 4–2
8. गत साढ़े चार सौ वर्षों की चौथाई / अर्धशती क्रम से विज्ञान संबंधित घटनाएँ – विजय खंडूरी 4–3
9. सौ साल की हुई हिंदी की पहली विज्ञान पत्रिका – विजय चितौरी 4–3
10. रसोई का विज्ञान – भाग द्वितीय – राजेन्द्र पाल 4–3

लेखकानुक्रमणिका

	लेखक	वर्ष–अंक
1.	अग्निहोत्री, प्रियंका	3–3
2.	अग्रवाल, पी.के.	4–3
3.	अग्रवाल, संतोष	1–3, 2–2
4.	अथीकुल्ला, जी.ए.	4–3
5.	अहमद, रिजवान	1–1
6.	उनियाल, अवनीश	3–1
7.	उपाध्याय, पुरूषोत्तम	1–1, 3–1
8.	ओझा, डी.डी. (दुर्गादत्त)	1–4, 4–4
9.	काली शंकर	1–3, 2–1, 2–3, 3–1, 3–3, 3–4, 4–2
10.	कुइति, दुर्गापद	3–1
11.	कुमार, आदित्य	1–1
12.	कुमार, बृजेश	1–1, 2–3
13.	कुमार, रवीन्द्र	1–4
14.	कुमार, विजय	2–4
15.	कुमार, संजय	3–2
16.	कोचगवे, इंदुभूषण	4–1, 4–2
17.	कोठारी, कैलाश	3–3
18.	कोठियाल, ललित	3–4, 4–4
19.	खण्डूरी, विजय	3–2, 3–4, 4–3
20.	खान, रूबिया	3–3
21.	खुल्बे, राजेश	4–3
22.	गुप्ता, नवनीत कुमार	4–1
23.	गुप्ता, नीना	2–2
24.	गुप्त, एस.के. (शशिकान्त)	1–1, 1–2, 1–3, 1–4, 2–1, 2–2, 2–3, 2–4, 3–1, 3–2, 4–4
25.	गैरोला, कुलदीप	1–3, 2–3
26.	गैरोला रश्मि	1–4
27.	गैरोला, विजय कुमार	1–4, 4–1
28.	गौड़, सुनील कुमार	4–3
29.	गंगोला, अनंत	1–1
30.	घिल्डियाल नम्रता	4–2
31.	चन्द्र, विकाश	2–1
32.	चमोला, दिनेश, 'शैलेश'	1–1, 1–3,(2), 1–4, 2–4,(2) 3–3, 3–4, 4–1
33.	चमोली, रघुनन्दन प्रसाद	1–2, 3–3, 4–3,
34.	चितौरी, विजय	3–2, 4–2, 4–3
35.	जोशी, गीता	4–2
36.	जोशी, मुकुन्द नीलकण्ठ	1–1(3), 1–2(3), 1–4, 2–1, 2–3(2), 2–4(2), 3–1, 3–2(2), 3–3, 4–1, 4–2(4), 4–3, 4–4
37.	जोशी, विपिन चन्द्र	1–4
38.	जोशी, वीणापाणी	1–1, 4–1
39.	झा, के.के.	2–4
40.	डुडेजा, दिव्या	1–4
41.	डोभाल, प्रद्युम्न	4–4
42.	तिवारी, जमुना प्रसाद	4–1
43.	तिवारी, विश्व मोहन	1–3, 2–1, 4–1
44.	तिवारी, एस.के.	2–1
45.	त्रिवेदी, रेखा	4–3, 4–4
46.	दिनेश मणि	2–2, 2–4, 3–1, 3–2, 3–3, 3–4
47.	दीक्षित, वीणा	3–3
48.	दुबे, अशोक कुमार	1–1, 1–2, 1–4, 2–3, 3–2, 4–2, 4–3,
49.	ध्यानी, पी.पी.	4–1
50.	नेगी, चतुर सिंह	4–2
51.	नेगी, जी.एस.	4–1
52.	नेगी, नीलम	3–3, 3–4
53.	पंडिता, एन.एन.	3–4
54.	पंत, अशोक कुमार	2–2
55.	पंत, गंगा प्रसाद	4–1
56.	पांडे, जे.सी.	2–1
57.	पांडे, पी.सी.	2–3
58.	पांडे, भावना जोशी	2–1(2), 2–3, 3–2
59.	पांडेय, बृजमोहन	4–3
60.	पाल, पल्लवी	3–3, 3–4
61.	पाल, राजेन्द्र	1–1, 1–2, 1–3, 2–1(2), 3–3, 4–2, 4–3,
62	पुरोहित, ईशान	4–4
63.	पुरोहित, बी.पी.	3–4
64.	पुरोहित, गुंजन	4–4
65.	बहुगुणा, अर्चना	2–3, 2–4
66.	बहुगुणा, कमल	1–4
67.	बियानी, अजय कुमार	1–1, 1–2, 1–3(2), 2–1, 2–2
68.	भट्ट, जगदीश चन्द्र	3–1
69.	भारद्वाज, कैलाश नारायण	3–4, 4–3
70.	मिश्र, रामचन्द्र	1–3
71.	मिश्र, विनोद कुमार	1–3, 1–4
72.	मौर्य, बीना	1–2
73.	यूशिएल, आइवर	1–2, 2–3, 3–1, 4–1
74.	राणा, दीपाली	1–1, 1–2, 1–4, 2–3, 3–2
75.	राणा, राहुल	1–1, 1–2, 2–1
76.	रावत, निर्मल	4–3
77.	रावत, यशवन्त सिंह	2–1
78.	रावत, यू.एस.	4–1
79.	रौतेला, पीयूष	4–1
80.	लक्ष्मी मंजुलिका	1–4, 3–3, 4–4
81.	वर्मा, निशा	3–3
82.	वर्मा, श्रीराम	1–1, 1–2, 1–3, 1–4, 2–1, 4–1, 4–3
83.	वल्दिया, खड्ग सिंह	4–1
84.	विजय, एम.	2–3
85.	वैष्णव, तारकेन्द्र	3–4
86.	शर्मा, गोपाल कृष्ण	1–4
87.	शर्मा, जी. तरू	2–2
88.	शर्मा, दिनेश चन्द्र	1–1, 1–2 (2), 1–3(3), 1–4, 2–1, 2–2(2), 2–3, 2–4, 3–1, 3–2, 3–3, 3–4, 4–1, 4–2, 4–3, 4–4
89.	शर्मा, धीरेन्द्र	2–2, 4–2
90.	शर्मा, बाबूलाल	3–3
91.	शर्मा, भवतोष	2–4, 3–3, 4–1
92.	शर्मा, महेश कुमार	3–1
93.	शुक्ला, अच्युतानन्द	1–1, 3–2
94.	शुक्ला, ईश्वरचन्द्र	3–2
95.	श्रीवास्तव, प्रेमचन्द्र	2–3, 4–2, 4–3, 4–4
96.	श्रीवास्तव, प्रीति	1–3
97.	श्रीवास्तव एस.के.	1–1
98.	श्रीवास्तव, सुनील कुमार	3–2
99.	सिंह, ओमवीर	2–3
100.	सिंह, हर्ष	3–3
101.	सूद, शैलेष	4–3
102.	हरिदास, शांभवी	1–4
103.	हुसेन, तारिक	3–3
104.	ह्यूमन, इरफान	1–2, 2–1

नोट : अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइये लेख से सम्बंधित चित्र।

1

2

3

4

5

6

Doc. XPS291114161